ज्ञान की खोज में

जगदीश शरण शर्मा

उत्तरी हिम महासागर
उत्तरी अमेरिका
एशिया
जापान सागर
साउथम्पटन
पेरिस
शिकागो
सान फ्रांसिसको
न्यू यार्क
होनोलुलु
अंध महासागर
पोर्ट सईद
देहली
कलकत्ता
बम्बई
मद्रास
कोलम्बो
अदन
हांगकांग
मनीला
अफ्रीका
प्रशान्त महासागर
दक्षिणी अमेरिका
हिन्द महासागर
पहली यात्रा
दूसरी यात्रा

लेखक का यात्रा-मार्ग

ज्ञान की खोज में

लेखक

डा० जगदीश शरण शर्मा

एम० ए०, डी० एल० एस० (दिल्ली)

एम० ए० एल० एस०, पी-एच० डी० (मिचिगन, अमेरिका)

पुस्तकालयाध्यक्ष तथा पुस्तकालय विज्ञान प्रशिक्षण-अधिकारी,

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, बनारस

भारती साहित्य मन्दिर

फव्वारा, दिल्ली

BY THE SAME AUTHOR

Mahatma Gandhi : A Descriptive Bibliography.

Jawaharlal Nehru : A Descriptive Bibliography.

Vinoba and Bhoodan : A Descriptive Bibliography.

Indian National Congress Circulars : A Descriptive Bibliography.

Indian National Congress : A Descriptive Bibliography (2 Vols.) (In preparation)

एस. चंद एण्ड कम्पनी

आसफअली रोड—नई दिल्ली

फव्वारा — दिल्ली

माई हीरांगेट — जालन्धर

लालबाग — लखनऊ

मूल्य २॥)

गौरीशंकर शर्मा, भारती साहित्य मन्दिर, दिल्ली, द्वारा प्रकाशित एवं श्यामकुमार गर्ग, हिन्दी प्रिन्टिंग प्रेस दिल्ली द्वारा मुद्रित।

दो शब्द

नियमित रूप से दैनिक डायरी लिखने का शौक मुझे बचपन से रहा है। दिल्ली विश्वविद्यालय में अपनी शिक्षा समाप्त करने के बाद जब मुझे विदेश में उच्च शिक्षा प्राप्त करने का अवसर मिला तो मैंने मार्ग में पड़ने वाले देशों का परिभ्रमण किया और अपने अनुभव और विचार डायरी में लिखता गया। सौभाग्य से पी-एच० डी० के लिए एक फैलोशिप मिली तो दूसरी बार मैं पुनः विदेश-यात्रा पर गया तो मेरे मन में यह विचार उठा कि देश-विदेश के सांस्कृतिक, शिक्षा सम्बन्धी, आर्थिक और सामाजिक स्थितियों के बारे में एक यात्रा-पुस्तक लिखूँ ताकि दूसरे लोग भी उनसे भली भाँति परिचित हो सकें।

अपने विवाह के कुछ माह पश्चात् ही मुझे दूसरी बार विदेश जाने का मौका मिल गया था और इस बार अपनी सुशील गृहिणी को साथ ले जाने का इच्छुक था; किन्तु वे माँ बनने वाली थीं अतः उन्हें साथ न ले जा सका। मैंने अपने यात्रा-अनुभवों को पत्रों के रूप में अपनी पत्नी के पास भेजा था ताकि वे मेरी यात्रा के विषय में जान सकें। वे पत्र मैंने बड़ी रोचक और ज्ञानवर्द्धक शैली में लिखे थे, जिन्हें मैंने इस पुस्तक में संकलित कर दिया है।

इस पुस्तक में मैंने देश-विदेशों के सांस्कृतिक और सामाजिक जीवन की चर्चा ही नहीं की वरन् उन पर अपने विचार भी प्रकट किए हैं, साथ-ही-साथ अपने विदेश प्रवास काल में अध्ययन और रहन-सहन पर भी कुछ प्रकाश डाला है। जो स्वाभाविक था।

मुझे पूरी आशा है कि हमारी नई पीढ़ी का तरुण-वर्ग इससे प्रेरणा ग्रहण करके सदैव ज्ञान की खोज के लिए लालायित रहेगा। तभी मैं अपना परिश्रम सफल समझूँगा।

अन्त में मैं अपने उन साथियों और अपनी पत्नी को धन्यवाद देता हूँ, जिन्होंने यह पत्र पढ़े और अपने अनुभवों को पुस्तकाकार लिखने के लिए सदैव उत्साहित किया। मैं विशेषतया अपने साथी और हिन्दी के तरुण लेखक एवं कवि श्री कन्हैयालाल चंचरीक का हृदय से आभारी हूँ जिन्होंने कि इन पत्रों के सम्पादन और पुस्तक की रूप सज्जा करने में योग दिया है।

मैं अपने प्रकाशक भारती साहित्य मंदिर के मालिक लाला श्यामलाल जी को भी धन्यवाद देता हूँ जिन्होंने कि इसे प्रकाशित करने का भार वहन किया।

—जगदीश शरण शर्मा

विषय-सूची

: १ :

मेरी पहली विदेश-यात्रा की कहानी

६२७ सिल्वन एवेन्यू,
एन० आर० बर
मिचिगन (यू० एस० ए०)
अप्रैल २६, १६५३

प्रिय प्रेम !

आज मेरा जन्म-दिन है, हुआ करे। मेरे लिए तो सभी दिन महत्त्व-पूर्ण हैं। एक-एक क्षण अपनी महत्ता की छाप लगाकर न जाने कहाँ गायब हो जाते हैं। अगर आज से मैंने तुम्हें अपनी दूसरी विदेश-यात्रा के दौरान में पहली विदेश-यात्रा की कहानी लिखनी आरम्भ की है तो शायद इसका महत्त्व मेरे लिए सिर्फ मनोरंजन ही नहीं होगा। मैं चाहता हूँ कि जब तक मैं तुमसे दूर, विदेश में हूँ, तुम्हें मेरी जुदाई का ज़रा भी आभास न हो। मैं पूरी कोशिश करता रहूँगा कि सप्ताह में एक बार तो अवश्य ही इस लम्बी कहानी को थोड़ा-थोड़ा लिखकर तुम्हें भेजता रहूँ। इसे लिख भेजने में मैं दो लाभ और भी देखता हूँ। प्रथम, मेरा हिन्दी लिखने का अभ्यास होता रहेगा। दूसरे, जब तुम इसे सव्यसाची[1] के सामने पढ़ोगी तो उस पर अच्छा असर पड़ेगा। और, उसे भी मेरी अनुपस्थिति का आभास न होगा।

मेरी पहली विदेश-यात्रा १४ अगस्त सन् १६४८ को सुबह ६ बजे शुरू हुई थी जब मैंने जीवनमें पहली बार 'भारत एयरवेज़'के एक डकोटा

[1] उस वक्त मां की गोद में आये कुछ ही सप्ताह हुए थे।

में कलकत्ते जाने के लिये कदम रखा था। इसका अन्त १९५० की १४ अगस्त की प्रातः ९ बजे हुआ। तब मैं पी० एण्ड ओ० लाइन्स के एस० एस० कैन्टन जहाज से बम्बई की भूमि पर उतरा, जहाँ मेरे पूज्य माता-पिता और अन्य शुभचिंतक इन्तज़ार कर रहे थे।

विदेश-यात्रा का विचार और उसका आभास

बाबूगढ़ छावनी में, जो आज वीरान पड़ी है, कभी बड़ी चहल-पहल रहती थी। हर तरफ हरे-भरे खेत नज़र आते थे। पक्की सड़कों पर दौड़ती हुई अंग्रेज़ों की रंग-बिरंगी चमकीली बग्घियाँ हमेशा दिखाई पड़ती थीं। सड़कों के चौराहों पर फूलों की क्यारियाँ फूली नहीं समाती थीं। इनके दोनों तरफ घने वृक्षों की टहनियाँ एक-दूसरे से ऐसे मिली रहती थीं कि जैसे सिर झुकाये किसी के स्वागत के लिए मीलों तक खड़ी हुई किसी की राह देख रही हों। सारा आलम बरबस ही अपनी ओर खींच लेता। बाबूगढ़ में यूँ बहार नज़र आती गोया काटों पर भी निखार आ गया हो। भला प्रकृति की इस निराली छटा को देख कौन न झूम-झूम उठता।

मुझे बाबूगढ़ का बचपन और उसका यौवन दोनों ही देखने का तो सौभाग्य प्राप्त न हो सका। पर इसका बुढ़ापा--खासतौर से इसके अंतिम दिनों को मैंने ज़रूर देखा, जब वह कातर निगाहों से आख़िरी साँस लेते-लेते दम तोड़ रहा था। मैंने इसके उजड़े चमन के परिन्दों को भूखे-प्यासे आवारा बादलों की तरह इधर-उधर भटकते भी देखा है। आज भी लोगों के एक्का-दुक्का मिल जाने पर वह दिल थाम कर यही कहता है—"बावरे, दुनिया आनी-जानी है। एक दिन सबको मिटना है।"

बाबूगढ़ छावनी के पास बसे एक छोटे से गाँव गज़ालपुर में मेरा जन्म हुआ था। उस समय इस बस्ती में ५०० से अधिक प्राणी न रहते

होंगे। जो ज़मीन का टुकड़ा इनकी रोटियों का सहारा है, वह एक तरफ छावनी में बँटा हुआ है। दूसरी ओर रेल की पटरियों ने, और पिछला भाग काली नदी ने काटकर पड़ोसी गाँव ददायरे को दे दिया है। और सामने वाला हिस्सा, जो अधिकतर रेतीला है, ग्राम-बिगास ने बाँट लिया है। परन्तु इतने पर भी यह बस्ती खुशहाल है और फ़लती-फलती रही है।

गज़ालपुर में इन लाइनों के लिखने तक भी कोई स्कूल नहीं खोला गया है। एक ज़माने से इसके लाल छावनी के स्कूल या हापुड़ के स्कूलों में विद्या प्राप्त करने जाते रहे हैं। और आज भी वही क्रम जारी है। मुझे भी एक दिन मेरे पूज्य दादाजी छावनी के प्राचीन स्कूल में दाखिल करा आये थे। मुझे याद है कि उन्होंने स्कूल के सभी बच्चों में बताशे बाँटे थे। परन्तु मेरा मन वहाँ न लगता। मैं रोता भी बहुत था, और मेरा हमेशा घर जाने-जाने को मन करता था। उन दिनों पं० मथुरा-प्रसाद मुख्य अध्यापक थे। वह दादाजी के मित्र थे, मुझे बहुत प्यार करते थे। और, जब मैं रोने लगता तो मुझे मिठाई देकर फुसला लिया करते थे। तुम्हें यह जानकर ताज्जुब होगा कि जब मैं सबेरे अपने और मित्रों के साथ स्कूल जाता तो रास्ते भर भगवान से यही प्रार्थना करता जाता था कि स्कूल बन्द मिले। मगर स्कूल खुला देखकर मैं बहुत निराश हो जाता था।

लेकिन थोड़े दिन बाद पढ़ने का शौक बढ़ने लगा और फिर स्कूल आना मेरे लिये भार न रहा। रोज़ सबेरे सारे दिन का खाना बगल में दबाकर और साथियों के साथ स्कूल जाना और शाम को वापिस आना, सालों तक यही चलता रहा। बाबूगढ़ छावनी हमारे रास्ते में पड़ती थी। सच पूछो तो छावनी के एक सिरे पर हमारा गाँव था और दूसरे सिरे पर स्कूल। रोज़ दो मील आना और दो मील वापस जाना। चार मील चलने के बाद भी ज़रा-सी भी थकान नहीं महसूस होती थी। घर

आते ही देखता कि दादीजी गर्म दूध का गिलास तैयार रखे हैं। मगर कभी-कभी मुझे खेलने से फुर्सत न मिलने के कारण उन्हें परेशान होकर मेरे पीछे-पीछे भागना पड़ता था।

छावनी की और बरकतें चाहे कुछ भी हों परन्तु जिन्हें मैं महत्त्व देता हूँ उनमें से एक यह है कि इसके आस-पास के गाँव बड़े खुशहाल थे, और आज भी हैं। छावनी से दूर बसे गाँव से इस पड़ोसी गाँव के लोग अधिक बढ़े-चढ़े हैं। मुझ पर भी छावनी का बहुत बड़ा असर पड़ा, जब मैं अंग्रेज़ों को बग्घियों, मोटरों और सायकिलों पर देखता तो मेरे मन में तरह-तरह के सवाल उठते। जब मैं ट्रैक्टरों को चलते देखता, खेत काटने वाली मशीनों को चलते देखता और घास के गट्ठर बाँधने वाले बड़े-बड़े इंजनों को देखता तो बड़ा अचम्भा होता था। कभी-कभी मैं अपने आपसे पूछता कि आखिर यह सब क्या है ? ये मशीनें कहां से आई हैं ? ये क्यों आये हैं ? ये अंग्रेज़ कौन हैं ? इनका रंग गोरा क्यों है ? ये कौनसी भाषा बोलते हैं ? इनके कपड़े हम से अच्छे क्यों हैं ? ये हम से अधिक तन्दुरुस्त क्यों हैं ? इनके खेल भी मुझे कभी-कभी अचम्भे में डाल देते थे। हमारे रास्ते में वह कॉफी हाउस भी पड़ता था, जिसके नज़दीक ये लोग क्रिकेट, टेनिस, बैडमिन्टन तथा अन्य खेल खेला करते थे। मैं बहुत देर तक उन्हें देखता रहता था। परन्तु वहाँ राहगीरों को बहुत देर तक खड़े रहने की इजाज़त नहीं थी।

एक दिन मैंने अपने उलझे हुए विचारों को सुलझाने का प्रयत्न किया। मैं अपनी दादी जी से पूछ ही तो बैठा कि ये गोरे कहाँ से आये हैं, और क्यों आये हैं ? मुझे याद है, उन्होंने कहा था कि ये विलायत से आये हैं और इन्होंने हमारे गाँव की अधिकतर ज़मीन पर कब्जा कर लिया है। दादी जी की बातों से मालूम होता था कि अंग्रेज़ों का आना गाँववालों को पसन्द नहीं है। मेरे दादाजी गाँव के बड़े प्रभावशाली

व्यक्ति थे । उनका मान सभी करते थे । मैं देखता था कि अगर कोई सिपाही, दरोगा या तहसीलदार या पटवारी गाँव में आता तो पहले उन्हीं के पास आकर ठहरता था । और, दादाजी उन सभी का स्वागत ही नहीं करते थे अपितु उनकी ख़ातिर भी खूब करते थे । गाँव की पंचायत भी इसी जगह होती थी । मुझे याद है कि एक बार मैंने एक दरोगा जी के गाल पर काट खाया था । मैं उस समय बड़ा शरारती माना जाता था । दादी जी के लिये रोज़ कोई-न-कोई झगड़ा तैयार रखता था ।

सिर्फ छावनी के वातावरण ने ही मेरे मन में विदेश जाने का बीज नहीं बोया था । गाँव के पास से झक-झक करती हुई जब ट्रेन गुजरती तब मुझे ख्याल आता था कि यह नागिन कहाँ से आती है और कहाँ जाती है । इसके बारे में भी मेरे दादाजी ने मुझे काफी बताया । मेरे पिताजी, जो दिल्ली में रहते हैं, मुझे अपने पास ले जाना चाहते थे । मगर दादीजी यह नहीं चाहती थीं, क्योंकि उन दिनों मैं ही घरका अकेला बच्चा था और वह मुझे अपने पास ही रखना चाहती थीं । लेकिन १६३४ में उनकी मृत्यु के १४ दिन बाद मुझे पिताजी दिल्ली ले आये और रामजस हाई स्कूल में मेरा नाम लिखवा दिया ।

१६४१ में मैंने दसवीं पास कर लिया । पिताजी का इरादा था कि मैं डाक्टर बनूँ, परन्तु नीली छतरी वाले ने कुछ और ही सोच रखा था । मैं आज भी नहीं भूला हूँ कि १६४१ में जब डाक्टर जोशी के अस्पताल में मेरी मासी की लड़की लक्ष्मी बीमार थी तो उनकी माताजी ने कहा कि हमारे घर में कोई डाक्टर नहीं है । जगदीश, तुम भी डाक्टरी नहीं पढ़ रहे ? मैंने उत्तर में कहा था कि मैं डाक्टर बनूँगा अवश्य, लेकिन दवाइयों का नहीं । ईश्वर ने मेरी लाज रखली । १६४५ में मैंने बी० ए० (ऑनर्स) पास कर लिया । ये चार साल बड़े महत्त्वपूर्ण

गुजरे। घर पर अच्छी तरह नहीं पढ़ सकता था, इसलिए मैं 'वोर्डिग हाउस' में रहने लगा। हिन्दू कालेज का 'बोर्डिग हाउस' कालेज से बहुत दूर था। यह सेंट स्टीफेन्स कालेज के सामने है। मेरा कमरा सड़क के किनारे लगा हुआ था। और सेंट स्टीफेन्स कालेज का क्रास मेरी खिड़की से अच्छी तरह नज़र आता था। कभी-कभी चाँद और उसकी चाँदनी भी इस खिड़की से झाँककर मुझसे बातें कर लिया करती थीं।

विदेश जाने का बीज तो बाबूगढ़ छावनी के प्रभाव द्वारा ही मेरे दिल में बोया जा चुका था। परन्तु उसका आभास मुझे यहाँ आकर ही हुआ। सेंट स्टीफेन्स कालेज में जो भाषण हुआ करते थे, उन्हें मैं बड़े गौर से सुनता। वहाँ के प्रोफेसरों से, जिनमें कुछ पादरी भी थे, मैंने जानकारी पैदा की। मेरी दिलचस्पी इतनी बढ़ गई कि बी०ए० (ऑनर्स) करने के बाद मैंने सेंट स्टीफेन्स कालेज में एम० ए० में दाखिला ले लिया। फिर तो विदेश जाने के बीज से अंकुर भी फूटने लगा। और, १९४७ में मैंने इतिहास में एम० ए० पास कर लिया।

अमरीका जाने के ख्याल से पहले मेरा इरादा लंदन जाने का था। इस बारे में मैंने अपने कालेज के मुख्य अध्यापक से सलाह ली। उन्होंने मुझे कुछ दिन भारत में ही रिसर्च करने को कहा। इसलिये मैंने इसी यूनिवर्सिटी में पी०-एच० डी० के लिये नाम लिखवा लिया, और मैं रिसर्च करने लगा। परन्तु भारत के दो भाग हो जाने से मेरे प्रोफेसर, जो मेरे सलाहकार भी थे, पाकिस्तान चले गये। उनके जाने के बाद यूनि-वर्सिटी में कोई और योग्य प्रोफेसर नहीं था जो भारतीय इतिहास के मुग़लकालीन इतिहास में निपुण हो। बड़ा परेशान था, क्या करूँ! मेरे कुछ मित्र आई० ए० एस० के लिये तैयारी कर रहे थे। और मेरे कालेज के प्रिंसिपल ने मुझे भी आई० ए० एस० की परीक्षा में बैठने को कहा। पर मुझे न जाने क्यों उस तरफ दिलचस्पी नहीं रही है। मेरे कई साथी

आजकल आई० ए० एस० हैं। अगर मैं भी कोशिश करता तो आसानी से बन सकता था। परन्तु मुझे तो कुछ और ही बनने की धुन थी और आज भी है। अपना-अपना शौक ही तो है। मुझे आई० ए० एस० का जीवन पसन्द नहीं। वहाँ इज़्ज़त और पैसा तो है, लेकिन इतनी आज़ादी नहीं जितनी कि मैं चाहता हूँ। इसके अलावा वहाँ और भी बहुत से बन्धन हैं।

इन दिनों मैं बड़ा परेशान था कि अब गाड़ी चले तो कैसे चले! मैं सोच ही रहा था कि दिल्ली यूनीवर्सिटी में एक नया विभाग खोला गया। यह विभाग लाइब्रेरी साइन्स का था। मैंने इसमें दाखिला ले लिया। सिर्फ इसी विषय का स्पेशियलिस्ट बनने का मेरा इरादा ही नहीं था बल्कि मैं आर्काएलाजी तथा आर्काइव्स का भी स्पेशियलिस्ट बनना चाहता था। भारत में आज इन विषयों का बड़ा महत्त्व है। देखो, ईश्वर को क्या मंजूर है।

: २ :

विदेश जाने की तैयारी

६२७ सिल्वन एवेन्यू
एन० आर० बर
मिचिगन (यू० एस० ए०)
ता० ३१ मई, १९५३

करीब एक नास पूर्व मैंने तुम्हें अपनी विदेश-यात्रा और उसके आभास पर कुछ शब्द लिखे थे। चाहता तो यही था कि शीघ्र ही दूसरा अध्याय लिखूँगा, परन्तु ऐसा न कर सका। कारण, अधिक काम रहता है। आज रविवार है, छुट्टी है, मौसम भी अच्छा है। मेरे घर के सामने चारों ओर फूल खिले हैं। हरे-हरे वृक्ष मदमाती हवा के झोंकों के साथ मस्ती से झूम रहे हैं। इनके इस तरह के झूमने में एक कशिश है, एक खिचाव है। अपनी खिड़की से टिकटिकी लगाये इनकी लीला देख रहा हूँ। चाँद भी अपने पूर्ण यौवन पर है। चाँदनी मेरे कमरे में खिड़की की जाली से छन-छन कर आ रही है। और, मैं तुम्हें लिख रहा हूँ: एक कहानी, जो मेरे जीवन का एक ज़रूरी अंग बन चुकी है। चाहता हूँ, इस अंग की तुम्हें भी जानकारी हो। इसीलिये ही तो लिख रहा हूँ। तुम्हारी याद मेरे विचारों का केन्द्र है, इनके दीपक की बाती हैं, इनकी शक्ति है।

शायद तुमने अंग्रेज़ी भाषा में 'जान' के ये दो शब्द, जो आज एक कहावत बनचुके हैं, सुने ही होंगे : 'इफ विशेज़ वेयर हार्सेज़, बेगर्स माइट

राइड'। मेरे अमेरिका जाने की तैयारी के बारे में अगर कोई ऐसा कहता, तो इसमें बहुत कुछ सत्य है। अमेरिका आने का चाव था, उच्च शिक्षा पाने के बलबले थे, जोश था और मनसूबे थे। पर मेरे जैसे मामूली लड़के के लिये यह कैसे मुमकिन हो सकता था। आज़ाद भारत सरकार ने उन दिनों वजीफे देने बन्द कर दिये थे। अपने देश के बहुत से पूँजी-पति तो विद्या पर खर्च करना और पाप करना एक बराबर समझते हैं। पास इतना पैसा कहाँ ? हर ओर निराशा की आँधियाँ चल रही थीं। वे मेरे अटूट विश्वास को हिला देना चाहती थीं।

न जाने क्यों मैं सदा निराशा में भी आशा के दर्शन पाता रहा हूँ। मेरे मन में उजाला था, वह आशा से पूर्ण था—बावजूद इसके कि मुझे कोई कारण नहीं नज़र आता था। अपने विचारों के इस आशा और निराशा के तूफान में बहते हुए मैंने यह फैसला किया कि क्यों न कोशिश जारी रहे ! जितनी तैयारियाँ मैं बिना पैसे कर सकता हूँ उतनी तो कर ही लूँ, बाकी देखा जायगा। इसलिये मैंने अपने पासपोर्ट के लिये प्रार्थना-पत्र भेज दिया। मैंने अमेरिका की अपने विषय की चार सबसे बड़ी यूनीवर्सिटियों में दाखिले के लिये प्रार्थना पत्र भेज दिया। यह मेरी ख़ुश किस्मती थी कि पासपोर्ट बनने में ज़रा भी देर न लगी। उधर यूनीवर्सिटियों ने भी मुझे एडमीशन दे दिया। अब सवाल था कि कौनसी यूनीवर्सिटी में जाया जाय। इसकी अधिक जानकारी करने के लिये मैं अमेरिकन इम्बैसी गया और वहाँ के एक जाने-पहचाने अधिकारी से सलाह ली। इत्तफाक से वह अधिकारी मिचिगन यूनीवर्सिटी के स्नातक थे। उन्होंने मिचिगन यूनिवर्सिटी की सलाह दी। उसी दिन मैंने अपनी मंज़ूरी का पत्र लिख दिया। इधर पासपोर्ट भी बनकर तैयार हो गया था।

यहाँ मैं यह लिख देना भी आवश्यक समझता हूँ कि मैंने अंग्रेजी

फैशन के कपड़ों का कैसे इन्तज़ाम किया। मैंने बताय था कि मैं सदा ही खद्दर का कुर्ता और पायजामा पहिनता रहा हूँ। धोबी से तो धुलवाने का कभी सौभाग्य ही नहीं प्राप्त हुआ। और मैं न ऐसा चाहता भी था। अपने ही हाथ से धोया करता था, और प्रेस भी करता था। मुझे अंग्रेजी कपड़ों के बारे में बिल्कुल जानकारी नहीं थी। पर मेरे कई ऐसे मित्र भी हैं जोबड़े अच्छे-अच्छे अंग्रेजी सूट पहिनते हैं। उनमें से मैं एक के पास गया और सलाह ली। हमने फैसला किया कि कनाट सर्कस में शर्मा टेलर्स से सूट बनवाये जायँ। यहाँ मैंने दो सूट बनवाये और एक पंडित टेलर्स से। टाई बाँधना भी मुझे इसी मित्र ने सिखाया।

पहले पत्र में लिख चुका हूँ कि मैं उन दिनों 'लाइब्रेरी साइन्स' में डिप्लोमा कर रहा था। उसकी परीक्षायें मई के आखिरी सप्ताह मे होने को थीं। यह सब तैयारी करते समय मैं अपनी पढ़ाई भी कर रहा था। साथ ही साथ अपने जेब खर्च के लिये मुझे ट्यूशन भी करना पड़ता था। जीवनसदा की भाँति कड़ा और व्यस्त था। मेरी परीक्षायें समाप्त हुई और जून के अन्त में परीक्षा-फल भी आ गया। मुझे सफलता मिली।

परीक्षाएँ समाप्त होने के बाद मैं अपना सारा समय तैयारीमें लगाने लगा। मुझे इसके लिये हर तरह की मुश्किलों का सामना करना पड़ा। मैं जानता हूँ कि कुछ ऐसे भाग्यशाली विद्यार्थी भी होते हैं जिनको ज़रा भी परवाह नहीं करनी पड़ती। पर मैं उनमेंसे नहीं हूँ। मेरे पास तो सिर्फ एक ही साधन है, और वह है—भगवान का सहारा। अमेरिका जाने का विचार सुनने में तो बड़ा अच्छा लगता है, परन्तु हक़ीकत में ऐसा नहीं है। इसके लिये बहुत से सर्टिफिकेट्स, खत और ज़रूरी काग़ज़ातों की ज़रूरत पड़ती है।

अमरीका सरकार जब तक 'विसा' न दे, तब तक कोईभी वहाँ

नहीं जा सकता। इसके पाने के लिये करीब-करीब आठ तरह के काग़-ज़ात दाखिल करने पड़ते हैं।

किसी ने ठीक ही कहा है कि जब मुसीबत आती है तो अकेले नहीं आती। पैसों का इन्तज़ाम तो करना ही था। पर अमेरिकन एम्बैसी के जिस डाक्टर के पास मैं सर्टीफिकेट लेने गया, वह बड़े विचित्र आदमी मालूम पड़ते थे। उन्होंने मुझे खूब परेशान किया। इसलिये नहीं कि मेरी सेहत ठीक नहीं थी, बल्कि जिन डाक्टर के पास मुझे खून परीक्षा, एक्सरे इत्यादि के लिये भेजना चाहते थे वह महँगे थे मैं जाना नहीं चाहता था। मगर जाना पड़ा और बड़ी मुश्किल के बाद उन्होंने मुझे सर्टीफिकेट दिया। 'मेडिकल सर्टीफिकेट' भी मिल गया। अब 'बैंक सर्टीफिकेट' और लेना था। इसके लिये मुझे जितनी परेशा-नियों का सामना करना पड़ा, वह मेरा दिल ही जानता है। पिताजी की महान् सहायता की छाप मेरे मन पर जीवन के आखिरी क्षण तक उतनी ही गहरी रहेगी जितनी कि यह आज है। मैंने ऐसे पिता बहुत ही कम देखे हैं। अन्त में मुझे बैंक सर्टीफिकेट भी प्राप्त हो गया।

सभी ज़रूरी काग़ज़ात देने के बाद मुझे अमेरिकन एम्बैसी से 'विसा' मिल गया। मैं कुछ क्षणों के लिये खुशी का आभास ही कर रहा था कि मुझे अपने 'ट्रेवेल एजेन्ट' से पता चला कि वह मेरे 'पैसेज' का इन्तजाम नहीं कर सके हैं। यह सुनकर बड़ी परेशानी हुई, दुख भी हुआ। इसी उलझन में मैंने सोचा कि 'इंडिया कॉफी हाउस' चलकर एक प्याला कॉफी पी जाय।

ज्योंही मैं दाखिल हुआ, मेरे एक पुराने मित्र इन्द्र ने, जो उन दिनों दिल्ली यूनिवर्सिटी में डी० ऐस० सी० के विद्यार्थी थे, अपने पास बुला लिया। मैं उनके पास जा बैठा। वह कुछ ही क्षणों में ताड़ गये कि मैं कुछ परेशान हूँ। परेशानी का कारण पूछा। मैंने सारी कहानी सुना

दी। कॉफी पीने के बाद मुझे एक दूसरे ट्रैवेल एजेन्ट के पास ले गये। 'एसिस्टेन्ट मैनेजर' उनका मित्र था। दफ्तर में आने के चन्द क्षणों बाद एसिस्टेन्ट मैनेजर के पास एक तार आया था। उसमें एक पारसी ने सूचना दी थी कि वह बीमारी के कारण उस जहाज से न जा सकेगा। मेरे मित्र ने मेरा परिचय एसिस्टेन्ट मैनेजर से कराया। दोस्त ने कष्ट देने का कारण बताया। उन्होंने कहा कि अगर मैं दो घंटे में रुपया जमा कर दूँ और दूसरे दिन सवेरे ६ बजे के हवाई जहाज़ से कलकत्ते जाना मंजूर करूँ तो वह मुझे उसी समय पैसेज दे सकते हैं। उस हालत में मेरे पास और कोई सूरत ही नहीं थी कि मैं शर्तें मंजूर कर लेता।

मेरे मित्र और मैं दोनों दफ्तर से बाहर आ ही रहे थे कि एक और मित्र कार में बैंठे मिल गये। हालचाल पूछा। उसे मेरी जल्दी का पता लगते ही उसने कहा कि मैं बैंक ले चलता हूँ। वह सहायता ईश्वर की भेजी हुई थी। हम तीनों बैंक पहुँचे, और एक घंटे के अन्दर मैंने किराया दाखिल कर दिया। मुझे टिकट मिल गया। इस काम के निपटने के बाद उसने मुझे एक छोटी-सी दावत क्वीन्सवे स्थित 'आल्प्स रेस्टोरेन्ट' में दी।

दिल्ली छोड़ने में सिर्फ १७ घंटे रह गये थे। बहुत-कुछ तैयारी करनी थी और सभी से मिलना था। मेरे मित्रों ने मुझे मेरे घर पर छोड़ दिया। मैंने माताजी को बताया कि सवेरे ६ बजे मैं अमेरिका जा रहा हूँ। पिताजी को इसकी सूचना देने मैं उनकी डिस्पेंसरी गया। घर के पंडित जी भी उसी समय मेरे साथ आये और मेरी तैयारी में मदद देने लगे। इस बीच जिन-जिन मित्रों और शुभचिंतकों को पता लगा वे मिलने आने लगे। आधी रात तक यह क्रम चलता रहा। उस दिन नींद तो कहाँ आनी थी। करीब दो घंटे बमुश्किल सोया। सुबह चार बजे ही बिस्तर छोड़ दिया। एक घंटे में तैयार होकर, पाँच बजने से कुछ

पहले टैक्सी में बैठकर मैं हवाई अड्डे पर जा पहुँचा। साथ में मेरे चाचा, श्रीरामचन्द्र तथा कई और स्वजन भी थे। ६ बजे 'भारत एयर-वेज़ के डकोटा' ने उड़ान भरना शुरू कर दिया। यह मेरे जीवन की पहली हवाई यात्रा थी।

: ३ :

दिल्ली से कलकत्ता

६२७ सिल्वन एवेन्यू
एन० आर० बर
मिचिगन (यू० एस० ए०)
ता० ७ जून, १६५३

रविवार होने की वजह से मैं आज सात बजे तक सोता रहा। अब आठ बजे हैं। प्रार्थना और नाश्ता आदि से फारिग होकर तुम्हें दिल्ली से कलकत्ता की अपनी पहली हवाई यात्रा का हाल लिखने बैठा हूँ।

जब मैं श्री रामचन्द्र जी व अपनी बहिन लक्ष्मी इत्यादि के साथ टैक्सी में घर से चला तो सवेरे के ४ बजकर ५५ मिनट हुए होंगे। पौ फट चुकी थी। अगस्त की चौदह तारीख थी। हर ओर शांति छाई हुई थी। गुलाबी जाड़ा पड़ रहा था। कार हवाई-अड्डे की ओर तेज़ी से दौड़ रही थी। मेरे मन में विचारों का तूफान उठ रहा था, भावनाएँ मन के पलने में झूल रही थीं। मेरे दिल और दिमाग़ पर एक अजीब-सी खुशी की रेखाएं उभर रहीं थीं। जब टैक्सी लाल किले और चाँदनी चौक के अंचल को छोड़कर गुजर रही थी तो मैंने अपने घर की तरफ दृष्टि दौड़ाई। परेड ग्राउन्ड की हरियाली पर मेरी नज़र रुक गई। एडवर्ड पार्क में खड़े लम्बे-लम्बे ताड़ों की खामोशी बड़ी मोहक लगी। ललचाई आँखों से फैज बाजार और देहली गेट को देखा और क्षणों में वे पीछे रह गये। कनाट सरकस का रंगीन बाजार जो अब खामोशी

की बाँहों में उन्मन-सा लेटा था, नयनों से ओझल हो गया। क्वीन्सवे के सुहावने चक्करदार पथ, किनारे के वृक्ष और झाड़ियाँ और अलसाई-सी कोठियाँ भी पीछे रह गईं और मुझे प्रतीत हुआ कि मैं उनसे दूर जा रहा हूँ। हवाई अड्डे से लगभग एक मील दूर मेरा मन दिल्ली-वियोग की कल्पना से तड़प सा उठा और क्षणमात्र में टैक्सी ने हवाई-अड्डे के आँगन में उतार दिया। मैंने अपना सूटकेस उतार लिया। फिर मेरा और सूटकेस का वजन किया गया और टिकट लिया। जिस भारत एयरवेज़ के हवाई जहाज से मुझे जाना था वह सामने दिखाई दे रहा था और कुछ मिस्त्री उसकी देखभाल कर रहे थे।

मैंने अभी तक महसूस नहीं किया था कि मैं अपने रिश्तेदारों, मित्रों, शहर और मातृभूमि को छोड़कर विदेश जा रहा हूँ। शायद मैं अपनी तैयारी में इतना तल्लीन रहा था कि मुझे यह अनुभव करने का अवसर ही नहीं मिला कि इस जुदाई की तड़पन कितनी पुरदर्द होगी। जब हवाई जहाज में बैठने के लिए केवल १० मिनट रह गये तो मैंने अपने चाचा श्री रामचन्द्र जी की आँखों की ओर देखा। लक्ष्मी बहन और श्रवण को मैंने फूलों के हार दे दिये। परन्तु जब सभी के नयनों से अश्रु-वृष्टि होने लगी तो मेरे साहस का बाँध टूटने लगा और जो आँसू नयन-कोरों में घुमड़ रहे थे पावस की तरह बह निकले। करीब पाँच मिनट तक मैं सब-कुछ भूल-सा गया और सोचने लगा कि यह सब क्या है ? मैं क्यों जा रहा हूँ ? इसी तरह के और भी सवाल सामने आये और मन अतीत की गहराइयों में डूब गया जबकि ज्ञानपिपासु सुदूर देशों में जाया करते थे। आज और उस समय की यात्राओं में बड़ा अन्तर है। तब साधन नहीं थे, अब सब-कुछ सुलभ है। इसलिए मन को धीरज बँधा और मैंने अपना होश सँभाल लिया।

छः बजने में करीब ५ मिनट शेष थे। हवाई जहाज का दरवाजा

खुला और यात्रियों को जहाज में बैठने को कहा गया। मैंने पिताजी के पैर छूए, चाचाजी और लक्ष्मी इत्यादि से गले मिलकर जहाज के द्वार की ओर चल पड़ा। मैं घुटन-सी महसूस कर रहा था। आँसू उमड़-घुमड़ कर बह रहे थे और रुकने का नाम न लेते थे। जहाज पंख पसारे नीलम नभ की ओर उड़ चला और मैं अश्रुपूरित आँखों से उसकी गोल खिड़की के शीशों से उनकी ओर देखता ही रह गया। मेरा हाल वैसा ही था जबकि २० जुलाई १६५२ की शाम को साढ़े आठ बजे जब मैं तुम्हारी ओर टकटकी लगाये देख रहा था और तुम मेरे जहाज 'एस० एस० सिटी ऑफ केपटाउन' के चलने की राह देखकर मेरी आँखों से ओझल हो गई थीं।[1]

मैं पहले ही कह चुका हूँ कि यह मेरी पहली हवाई यात्रा थी। जहाज में अन्दर जाते ही पेटी कसने को कहा गया और कानों में रुई लगाने को दी गई। मैंने कानों में रुई लगाली और खिड़की से नीचे देखता रहा। ज्यों-ज्यों जहाज ऊपर चढ़ता गया चीजें छोटी-छोटी होती गईं। नील यमुना ऐसी लगती थी जैसे कोई मुड़ा हुआ धागा पड़ा हो। पेड़-पौधे तो सिर्फ छोटे-छोटे हरे बिन्दु से नजर आते थे।

थोड़ी देर पश्चात् एक सुन्दर-सी तश्तरी में कुछ बिस्कुट और गर्म कॉफी का प्याला लाया गया। आँसू बहाने और मानसिक परेशानी से मेरे सिर में हलका-हलका-सा दर्द हो गया था। गर्म कॉफी ने मानो जादू का सा काम किया। कॉफी पीकर फिर नीचे के नज़ारे देखने लगा। नागपुर पहुँचने तक मैं ऐसे ही रस लेता रहा।

नागपुर हवाई अड्डे पर हम करीब २० मिनट ठहरे होंगे। यहाँ पाँच यात्री चढ़े और तीन उतरे। चढ़ने वालों में तीन बड़े

---

[1] **दूसरी बार जब मैं अमेरिका गया था तब मेरी शादी हुए करीब ६ माह हुए थे।**

व्यापारी मालूम होते थे और शेष एक रमणी अपनी छोटी पुत्री के साथ थी। यह बच्ची करीब पाँच साल की होगी। देहली से चढ़ने वालों की तादाद आठ थी और अधिकतर व्यापारी प्रतीत होते थे। इनमें से एक बंगाल का कोई नेता मालूम देता था जो कान्स्टीट्यूऐन्ट असेम्बली का सदस्य भी था। ये महाशय खद्दर के वस्त्र पहने हुए थे और मैं भी खद्दर के कपड़ों में था। अचानक पूछने लगे कि मैं कहाँ जा रहा हूँ। मैंने सब बता दिया। शायद उन्हें पहले ही अन्दाज़ हो गया था; क्योंकि वह घूर-घूर कर देख रहे थे और मेरी परेशानी से वाकिफ़ थे। उन्होंने मेरी ओर बड़ी गंभीरता से देखा और पूछने लगे कि कलकत्ते में ठहरने का मेरा क्या प्रबन्ध है ? मैंने बता दिया कि अपने एक मित्र के पास ठहरने का इन्तज़ाम किया है। यह महानुभाव करीब ६० साल के होंगे। बड़े सज्जन प्रतीत होते थे। जहाज में शेष सब अपनी-अपनी धुन में मस्त थे। न मैं उनसे बोला और न वे मुझसे बोले।

मैंने सुना था कि 'एअर सिकनैस' यात्रियों को बड़ा परेशान करती है। शायद इसलिए ही यात्रियों के पास काग़ज़ की थैलियाँ रखी होती हैं, ताकि उल्टी आने पर वे थैली में उल्टी कर दें। मुझे नागपुर तक 'एअर सिकनैस' ने नहीं सताया। परन्तु नागपुर छोड़ने के बाद मेरे पास बैठी हुई बच्ची जब उल्टी करने लगी तो मेरा भी जी मिचलाने लगा। कुछ देर तक रोकता रहा। मगर जब जहाज एकदम ऊपर से नीचे आ गया और फिर नीचे से ऊपर आ गया तो मैं अपने आपको काबू में न रख सका। मैंने पास रखी काग़ज की थैली उठाई और उल्टी करनी चाही; परन्तु आई नहीं। वैसे पेट में तकलीफ़ हो रही थी।

जब हमारा जहाज कलकत्ते के करीब आया तो रफ्तार कुछ कम

हो गई । मैं बराबर नीचे देख रहा था। चारों ओर हरियाली ही हरियाली नज़र आती थी। नारियल के वृक्ष बड़ी शान से खड़े थे। लाल खपरैल के घर इस हरियाली को एक अजीब खूबसूरती प्रदान कर रहे थे । ऐसा मालूम होता था जैसे हरे और गदराये आमों पर सुर्खी नज़र आती है। आहिस्ता-आहिस्ता जहाज नीचे उतरा और हम सब यात्री एक एक-करके बाहर आ गये ।

उस समय क़रीब दो बजे होंगे । आसमान साफ़ था। धूप भली मालूम देती थी। चारों ओर हरियाली नज़र आती थी। परन्तु हवा देहली जैसी नहीं थी । हवा में नमी मालूम देती थी । मेरा सूटकेस एक बड़ी ट्रक में लादा जाने लगा और यात्रियों को सूचित किया गया कि २० मिनट बाद भारत एअरवेज की बस शहर के दफ्तर के लिए रवाना होगी । मैंने अपने मित्र को अपने आगमन की पूर्व सूचना दे दी थी । हवाई अड्डे पर आने के बाद मैंने उसे अपने पहुँ-चने की सूचना टेलीफोन से दे दी । तथा उसने मुझे भारत एअरवेज के दफ्तर पर मिलने का वचन दिया ।

२० मिनट व्यतीत होने में देर न लगी । जिन यात्रियों के पास शहर जाने का कोई और साधन न था वे बस में बैठ गये और बस चल पड़ी । कलकत्ता आने का मेरा यह प्रथम अवसर था । यहाँ की भीड़-भाड़ को देखकर मुझे कुछ नया-नया सा महसूस होता था। हर क्षण मुझे एक नये अनुभव का सन्देश लाता था। थोड़ी देर बाद हमारी बस बड़े-बड़े बाजारों में से गुजरने लगी और भारत एअरवेज के दफ्तर के सामने आ खड़ी हुई ।

बस से नीचे उतर ही रहा था कि मेरे मित्र ने अपनी क्लासिकल वाणी में मुझे पुकारा 'जगदीश तुम आ गये ।' टैक्सी लेकर हम दोनों घर आ गये । मेरे मित्र ने मेरा परिचय अपने माता-पिता,

पत्नी और बच्चों से कराया। कुछ समय पश्चात् मैंने स्नान किया और कपड़े बदले। उस दिन १४ अगस्त थी। जगह-जगह स्वातन्त्र्य पर्व मनाने के लिए रोशनी, झण्डियों और तोरण द्वारों से सजावट की जा रही थी। मेरे मित्र महोदय मुझे चौरंगी मैदान एवं विक्टोरिया स्मारक दिखाने ले गये। तुम्हें याद होगा कि जिस तरह मैं और तुम १९ जुलाई १९५२ को बहुत रात तक विक्टोरिया स्मारक के पास बैंच पर बैठे रहे थे उसी प्रकार इस दिन भी हम दोनों मित्र बैठे हुए थे। करीव ११ बजे हम लोग घर वापिस आ गये और मैं गहरी नींद सो गया।

दूसरे दिन जब मैं सोकर उठा तो सूरज निकल आया था। नहा धोकर नाश्ता किया और सारे दिन का प्रोग्राम बनाया। इस दिन मुझे कई आवश्यकीय कार्य करने थे। 'अमेरिकन एक्सप्रैस' के ट्रैवलर्स चैक्स लेने थे और अमेरिकन एअरवेज के वाउचर के बदले टिकिट लेना था। साथ ही यह भी निश्चित करना था कि मेरा नम्बर कौन से जहाज में आयेगा तथा किस तारीख को किस समय यात्रा करनी पड़ेगी। मेरा मित्र और मैं बाजार में आये और मालूम किया कि आया ट्रैवल एजेण्ट का दफ्तर आज १५ अगस्त के कारण बन्द तो नहीं है। ज्ञात करने पर पता चला कि कार्यालय बन्द है। तब मुझे सारा कार्यक्रम बदलना पड़ा। मैं अपने मित्र के साथ उसके दफ्तर में गया जिसका कि वह मैनेजर था।

तीन घण्टे बाद हम लोग दोपहर का खाना खाने घर आए। भोजन से निवृत्त होकर और थोड़ा आराम करके हम फिर बाजार की ओर निकल पड़े। मुझे कुछ जरूरी चीज़ें खरीदनी थीं जिन्हें मैं शीघ्रता के कारण दिल्ली में नहीं खरीद सका था। सायंकाल हमारे एक बंगाली मित्र ने हमें एक उत्सव में आने का निमन्त्रण दिया।

वहाँ से फारिग होकर हम एक चीनी होटल में खाना खाने आए। इसके बाद विक्टोरिया स्मारक और चौरंगी की रोशनी देखी। थोड़ी देर बाद घर लौट आए। उन दिनों मेरे मित्र एक उपन्यास लिख रहे थे। उन्होंने एक अध्याय भी पढ़कर सुनाया जो बड़ा रोचक था। अब वह उपन्यास 'एकाकी' के नाम से प्रकाशित हो चुका है। थोड़ी देर पश्चात् हम सो गये।

१६ अगस्त को प्रातःकाल मैं 'ट्रैवल-एजेण्ट' के दफ्तर में गया। बड़ी भीड़-भाड़ थी। इस साल करीब २०० विद्यार्थी अमेरिका जा रहे थे। भारत सरकार ने हमारे लिए 'अमेरिकन एअरवेज' का एक जहाज तय कर रखा था। इसी जहाज में थोड़े-थोड़े करके हमें हाँगकाँग जाना था। हाँगकाँग से हमें 'अमेरिकन प्रेसीडेण्ट लाइन्स' का पानी का जहाज एस० एस० जनरल मीग्स लेना था। मेरा नम्बर १७ अगस्त को आया और मैं करीब ६० विद्यार्थियों के साथ रात के १ बजे थाईलैण्ड की ओर रवाना हुआ।

: ४ :

कलकत्ते से श्याम

९२७ सिलवन एवेन्यू
एन. आर. वर्ग
मीचगन (यू. एस. ए.)
ता० २१ जून १९५३

आज रविवार है। सबेरे के नौ बजे हैं। अभी-अभी नाश्ता करके चुका हूँ। नाश्ता जैसा तुम जानती हो बड़ा सादा होता है। दो केले, दो सेब, और एक कॉफी का प्याला। अब शाम को ही खाना खाऊँगा; क्योंकि रविवार को मैं एक ही समय खाना खाता हूँ। ऐसा करने से मेरा शरीर नीरोग और स्वस्थ रहता है। यह तो मैं पहले ही लिख चुका हूँ कि मैं अपने विचारों पर सदैव काबू पाने का प्रयास करता रहता हूँ। मेरा अभी तक का जीवन बड़ा सादा और कड़ा बीता है। अमेरिका जैसे देश में रहते हुए भी यहाँ के भौतिकवाद की छाप मुझ पर अभी तक नहीं लग पाई। जो बातें यहाँ की पसन्द हैं उन्हें अपना लेता हूँ, जो मेरे सत्यमार्ग से भिन्न हैं उनकी ओर कभी ध्यान ही नहीं देता। ऐसे ही जीवन बीत रहा है।

स्वाभाविक रूप में जिस वस्तु और विचार को मैं सही समझता हूँ उसे कायम रखने और पाने का यथाशक्ति उपाय करता हूँ। उच्च शिक्षा का विचार इन सब विचारों में महान् है, ऐसा मेरा विश्वास है।

७ जून के पत्र में मैंने दमदम के हवाई अड्डे पर पहुँचने तक

का हाल लिखा था। हवाई अड्डे पर जाने के लिए हम सब विद्यार्थियों को 'ग्राण्ड होटल' पर जमा होना पड़ा था। वहाँ से पैन अमेरिकन एअरवेज की बसें हवाई अड्डे तक ले गई थीं। मेरे मित्र ने मुझे 'ग्राण्ड होटल' पर क़रीब ११ बजे छोड़ दिया था। हमें यहाँ से १२ बजे जाना था। अब सवाल था कि एक घण्टा कैसे व्यतीत किया जाय। यह मैं पहले भी लिख चुका हूँ कि मेरे जीवन का हर क्षण जो इन दिनों बीत रहा है बड़ा महत्त्वपूर्ण है। प्रतीक्षालय में नये-नये चेहरे नज़र आ रहे थे। आज १ बजे के हवाई जहाज से जाने वालों की कुल संख्या लगभग ५० थी। मालूम होता था कि ये लोग भारत के सभी भागों से आये थे।

इस समय मेरे मन में खुश और रंजीदा विचार खेल रहे थे। घर की याद, देश की याद और दूसरी ओर उच्च शिक्षा पाने के लिए विदेश जाने की खुशी। समय द्रुतगति से बीत रहा था। उसे किसी की भावनाओं से कोई सरोकार न था। वहाँ पर आए हुए चंद यात्रियों से परिचय किया। कुछ बातचीत हुई कि कहाँ से पधारे है और अमेरिका में किस विश्वविद्यालय में पढ़ने के लिए जा रहे हैं। इस तरह एक घण्टा बीतने में देर न लगी। हमें सूचित किया गया कि बसें तैयार हैं और हम अपने-अपने समान के साथ हवाई अड्डे जाने के लिए बसों में बैठ जायं। मैंने अपना सूटकेस उठाया और बस की ओर चल पड़ा। हमारे सूटकेस एक ट्रक में लाद दिए गए और हम लोग सामने खड़ी बस में बैठ गये। करीब पांच मिनट के बाद बस चल पड़ी और कलकत्ते की चौड़ी सड़कों पर सन्नाटे भरने लगी। इस समय १२ बज चुके थे। परन्तु अभी तक कारें आ जा रही थीं। हवा बड़ी सुहावनी चल रही थी और ज्यों-ज्यों बस आगे बढ़ती जाती थी कलकत्तें की रंगीन दुनिया पीछे रहती जाती थी। जब हमारी बस बड़े-बड़े बाजारों को पार करके मैदान में आई तो हवा और भी सुहावनी प्रतीत हुई। मन में बड़े

विचित्र भाव अंगड़ाइयाँ ले रहे थे।

जब हमारी बस एग्ररपोर्ट से क़रीब एक मील दूर थी तो हमें एक जहाज नीचे उतरता नज़र आया। मेरे विचारों का तारतम्य टूट गया और हवाई अड्डे ने मेरा ध्यान अपनी ओर खींच लिया। हमारी बस हवाई अड्डे के बरामदे में आकर खड़ी हो गई और सब लोग उतर पड़े। उधर हमारा सामान ट्रक से उतारा जा रहा था। सबने अपने-अपने सामान को संभालना शुरू किया और फिर वजन कराया। हर छोटे-बड़े सूटकेस पर उसके मालिक के नाम और पते की चिट लगाई गई और हमारे अन्दर जाने के पहले ही इसे जहाज के पास भेज दिया गया।

कलकत्ते की पुलिस ने हमारे पासपोर्ट और अन्य ज़रूरी कागज़ात देखे और उन पर मोहर लगाई। एग्रर कम्पनी के डाक्टर ने हमारे कॉलरा और चेचक के तथा पीले बुखार के टीकों के प्रमाणपत्रों की देखभाल की और फिर हमें अन्दर जाने को कहा गया। हमारा जहाज पहले से ही रिजर्व था इसलिए तैयार खड़ा था। हमें इसमें बैठने को कहा गया और मैं भगवान् का नाम लेकर जहाज के अन्दर एक सीट पर बैठ गया।

भारत एग्ररवेज के जिस डकोटा से देहली से कलकत्ते आया था उससे पैन अमेरिकन एग्ररवेज का यह जहाज क़रीब-क़रीब ६ गुना बड़ा होगा। मुझे ठीक याद है कि इस जहाज में ६ इंजन थे। करीब ६० या ६५ यात्री बैठे होंगे। इसके बीच की ऊँचाई भी काफी थी। कोई भी आदमी आसानी से बिना झुके खड़ा हो सकता था। सीटें भी बड़ी आरामदायक थीं और पैर फैलाने के लिए भी काफी जगह थी। सर्दी से बचने के लिए हर यात्री को एक-एक कम्बल भी दिया गया था, आराम के लिए तकिए भी दिए गये थे। हवाई जहाज से उड़ने का मेरा यह

दूसरा मौका था। अतः कुछ नया नया तो मालूम नहीं हुआ। यह जहाज अधिक हिलता भी नहीं था। साथ ही बहुत आरामदायक था। मुझे इस जहाज में बैंकाक तक एअर सिकनैस जरा भी महसूस नहीं हुई। थोड़ी देर बाद हमारे लिए कुछ नाश्ता लाया गया। मैंने दो केले और एक कॉफी का प्याला ले लिया और फिर अपने पास की सीट पर बैठे यात्री से बातचीत करने लगा। यह मदरासी भाई थे और भारत सरकार के किसी बड़े अधिकारी के सुपुत्र थे। लगते तो बड़े शाही थे; किन्तु भले मालूम होते थे। हमें बातें करते-करते करीब दो बज गये। फिर वे सज्जन सो गये। मैं भी सोने की कोशिश करने लगा; किन्तु मुझे सफर में कम नींद आती है। फिर भी मैंने आँखें बन्द कर लीं। कुछ देर बाद थोड़ी देर के लिए सो गया। शाम को एक घण्टे बाद मुझे एक दम जाग जाना पड़ा। हवा में तेजी आ गई थी। धूल का छोटा-सा तूफान आ गया था। जहाज चलाने वाले के लिए मुश्किल खड़ी हो गई थी। परन्तु छः बजे धूल कुछ कम हो गई और सूरज भी निकलने लगा।

जब हमारा हवाई जहाज बैंकाक के हवाई अड्डे पर उतरा तो उस समय सबेरे के सात बज चुके थे। यहाँ पर हमें करीब एक घण्टा ठहरना था, क्योंकि यात्रियों को नाश्ता लेना था, तथा जहाज को भी अपना तेल-पानी लेना था। एक-एक करके हम सब नीचे आ गये। सूरज खूब निकल आया था। हवा तेजी से चल रही थी और सुहावनी मालूम देती थी। हर ओर हरे-हरे वृक्ष थे। केले के वृक्षों के बड़े-बड़े हरे पत्ते हाथी के कान के समान मालूम दे रहे थे और ऐसे ज्ञात होते थे जैसे हवा में मस्ती के साथ झूम रहे हों। हवाई अड्डे की इमारत क़रीब-क़रीब लकड़ी की बनी हुई थी। छतें अधिकतर छप्पर की थीं। उन पर फ़ूलों से लदी बेलें लिपटी हुई थीं जो बड़ी भली मालूम दे रही थीं।

हमारा परिचय गुसलखानों से कराया गया। मैं नहा धोकर फारिग हुआ और फिर नाश्ते के लिए एक बड़े से कमरे में आ गया। यह कमरा बड़ा अच्छा था। हमारा हवाई जहाज इस कमरे के बड़े-बड़े दरवाजों से साफ़ नज़र आता था। इसमें तीन बड़ी-बड़ी मेजें थीं, जिन पर सफेद मेज-पोश बिछे थे। मेजों पर फलों की तश्तरियाँ, काँटे-छुरी, नेपकिन आदि सजे हुए थे। सभी यात्री नाश्ते के लिए बैठ गए। मेरे पास बैरा आया और अण्डा तथा बेकटा रखने लगा। मैंने जरा मुस्कराते हुए कहा कि मेरे लिए दलिया, दूध, टोस्ट, फल और चाय ही काफी होगी। दलिया भी मौजूद था। मैंने मन भर कर नाश्ता किया। यहाँ के फ़ल बड़े शानदार थे। खास तौर से केले और चकोतरे तो बड़े ही मज़ेदार थे। मेरे जैसे लड़के के लिए यह नाश्ता विलासमय था; परन्तु मजबूरन मुझे लक्जूरियस होना पड़ रहा था।

हम नाश्ता खत्म करने वाले ही थे कि लाउड स्पीकर से हमें बताया गया कि तूफान का खतरा है, इसलिए हवाई जहाज तीन घण्टे देर से उड़ेगा। मैंने अपने कुछ मित्रों से सलाह ली कि क्यों न इस समय का लाभ उठाया जाय। मैंने पहले ही नक्शे से मालूम कर लिया था कि बैंकाक यहाँ से अधिक दूर नहीं है। अतः क्यों न इस बीच में नये शहर को देखने का प्रस्ताव किया जाय। कुछ मित्रों को यह सुझाव पसन्द आया और शीघ्र ही हमने इस बारे में और जानकारी प्राप्त की। मैं दो मित्रों के साथ दफ्तर गया कि यहाँ कोई बस या टैक्सी बैंकाक जाने को मिल सकती है। खुशकिस्मती से वहाँ एक बस खड़ी थी। परन्तु हमें बैंकाक शहर जाने की आज्ञा भी ले लेनी थी। मैंने नई देहली में अपने यात्रा एजेण्ट के कहने पर थाईलैण्ड के राजदूतावास से पासपोर्ट में एण्डोर्समेण्ट करा लिया था और इसकी फीस भी दे दी थी। मुझे तो कुछ दिक्कत नहीं हुई; लेकिन कुछ मित्रों को आज्ञा लेनी पड़ी। आज्ञा

मिलते ही हमने बस को तै किया और बैंकाक की ओर चल पड़े।

बैंकाक जिसकी आबादी ६८८,८३२ है, थाईलैण्ड यानी श्याम की राजधानी है। यह शहर मेनाम दरिया के किनारे श्याम की खाड़ी के पास बसा हुआ है और श्याम का व्यापारिक केन्द्र है। यहाँ से चावल, टिन, टीक और रबर बाहर भेजा जाता है। यहाँ चावल साफ करने, लकड़ी चीरने और पानी के जहाज बनाने के छोटे-छोटे कारखाने हैं। यह शहर रेल के ज़रिये सिंगापुर, चियागमाई और प्रोमपिन्ह से मिला हुआ है।

बैंकाक काफी पुराना शहर मालूम पड़ता है। यहाँ बौद्ध शिल्प-कला के मकान और मन्दिर नजर आते हैं। १९वीं सदी से यहाँ यूरोपीय ढंग के मकानात बनने शुरू हुए हैं। तब से ईसाई मिशनरी यहां काफी तादाद में आने लगे। प्रमुख इमारतें यहाँ ग्रांड पैलेस और ड्यूसिट पैलेस हैं। चूँकि हमारे पास बहुत कम समय था; इसलिए हम इन इमारतों को अन्दर से न देख सके। परन्तु सरसरी नज़र से शहर का कुछ हिस्सा ज़रूर देख लिया। क़रीब डेढ़ घण्टे बाद हम लोग हवाई अड्डे पर वापिस आ गये। मालूम हुआ कि आध घण्टे में जहाज चलने वाला है। आध घण्टे बाद यानी ११ बजे हम फिर अपनी-अपनी सीट पर आ बैठे और जहाज चल पड़ा।

: ५ :

श्याम से हाँगकाँग

६२७ सिलवन एवेन्यू,
एन० आर० वर्ग
मीचगन (यू०एस०ए०)
ता० १ अगस्त, १६५३

करीब पाँच सप्ताह बाद आज फिर अपनी प्रथम विदेश यात्रा के बारे में तुम्हें लिख रहा हूँ; क्योंकि आज मैं लिखने के मूड में हूँ।

बैंकाक से हाँगकाँग जितना छोटा था उतना ही दिलचस्प भी था। खिड़कियों के शीशों से बहार देखने का चाव अब और भी बढ़ने लगा क्योंकि अब दृश्य कुछ और ही था। हम लोग समुद्र के ऊपर उड़ रहे थे अतः हर तरफ नीला ही नीला नज़र आता था। कभी-कभी एक-दो पहाड़ भी नज़र आते थे। हवा की तेज़ी कुछ कम थी। परन्तु क़रीब दो घण्टे उड़ने के बाद आसमान पर काले-काले बादल छाने लगे और वायुयान चालकों को दिक्कत होने लगी। उन्होंने जहाज की ऊँचाई बादलों से ऊपर कर दी। परन्तु अब भी कभी-कभी जहाज बादलों के ऊपर और कभी-कभी एकदम नीचे आ जाता था। ऐसे समय पेट में बड़ी अजीब-सी सिहरन होती थी।

आप पूछ सकती हैं कि यात्रियों को जहाज की ऊँचाई कैसे मालूम होती है? क़रीब सभी जहाजों में यह नियम है कि एक-एक घण्टे बाद वह यात्रियों को एक चार्ट के ज़रिये यह बताते रहते हैं कि हम कहाँ हैं,

कितनी ऊँचाई पर हैं और किधर जा रहे हैं। जहाज के अधिक हिलने से हम में से बहुत से लोग परेशान थे। कुछ तो उल्टियाँ भी करने लगे और कुछ लोग बड़े चिन्तित से मालूम होने लगे। यह हालत क़रीब दो घण्टों तक रही।

जब हमें उड़ते-उड़ते क़रीब पाँच घण्टे हो गये तो काले-काले पहाड़ों की कतारें नज़र आने लगीं। इधर वर्षा भी रुक गई। हवा की तेज़ी भी कम हुई और वायुयान अपनी साधारण रफ्तार पर आ गया। नाश्ते का समय भी हो ही चुका था। मगर मैं चाहता था कि पहले बाथरूम जाया जाय; क्योंकि उस रोज मैंने खूब फल खाये थे और दूध वगैरह भी पिया था। आप सोचती होंगी कि हवाई जहाज में कैसा बाथरूम होता होगा। यह सदा जहाज के आख़िरी भाग में होता है और जो चीज़ें होनी चाहिएँ वह सभी होती हैं। एक आदमी आसानी से खड़ा हो सकता है। परन्तु जरा संभलकर खड़ा होना पड़ता है। पकड़ने के लिए रेलिंग्स होती हैं। वहाँ से फारिग होकर तो धड़ाम से अपनी सीट पर आ गिरा। बैठते ही कॉफी का प्याला, अँगूर, सेब इत्यादि सामने आ गये। मैं छोड़ने वाला नहीं था। जो मेरे हिस्से के थे सब को चट कर गया और फिर गर्म कॉफी का प्याला पिया मानो आराम-सा आ गया। खाने के बाद नींद आने लगी और मैं आध घण्टे के लिए सो गया।

जो मद्रासी भाई मेरे पास बैठे थे वह खुशी से इतने बेताब हुए कि मुझे जगाकर कहने लगे कि देखो कितना सुन्दर प्रकृति का नज़ारा है। पहले तो उनका जगाना अखरा परन्तु सुहावना नज़ारा देखकर सोचा कि इसने अच्छा ही किया वरना यह अपूर्व छटा देखने को कब मिलती ?

हमारा हवाई जहाज अब हाँगकाँग के बन्दरगाह पर उड़ रहा था

और नीचे उतरने वाला ही था। नीचे का दृश्य इतना मनोहर और सुन्दर था कि जीवन भर नहीं भुलाया जा सकता। एक तरफ पहाड़ और पहाड़ों पर बनी सुन्दर सड़कें और अच्छे-अच्छे मकान थे और दूसरी ओर उनके नीचे अथाह नीला सागर था और उसमें सैंकड़ों जहाज खड़े थे। शाम हो चली थी। सूरज की किरणें पानी में चमक रही थीं और हर ओर एक अजीब नजारा छाया हुआ था। इस सुहावने प्रकृति सौंदर्य की गोद में हमारा जहाज आ बैठा। हाँगकाँग का बन्दरगाह बहुत छोटा-सा है, परन्तु बड़ा सुन्दर है। तीन ओर पहाड़ और एक तरफ अथाह नीला सागर, ऐसा मालूम होता जैसे सब्जी गरम करने का पेन हो। जहाज से नीचे उतरते ही हमारा पासपोर्ट देखा गया और फिर सामान की तलाशी ली गई। इन सब बातों से निवृत्त होकर जब हम कस्टम हाउस से बाहर आये तो एक बुड्ढा चीनी और उसका जवान सहयोगी कुछ शीशियाँ लिये खड़े थे। वे यात्रियों को दो-दो शीशियाँ बाँटने लगे। मुझे इस तरह का स्वागत कुछ अखरा। मैंने पूछा कि इस तरह ये शीशियां आप किस लिए दे रहे हैं। बूढ़ा अपनी साफ़ आवाज़ में कहने लगा कि कल आप सबका डाक्टरी इम्तहान होगा और इन शीशियों में सबको अपना मल और मूत्र लाना होगा। सुनकर बड़ी हँसी आई और मन में दुःख भी हुआ। मन में सोचा कि अभी एक सप्ताह पहले जाँच कराके आये हैं। खैर, दूसरे दिन डाक्टर के पास जाना पड़ा तथा ३५ रुपये फ़ीस के भी देने पड़े। मेरी राय में यह एक फिजूल की बात थी।

होटल में जगह न होने के कारण हमारे सारे बैच के ठहरने का इन्तज़ाम पहाड़ी पर बने एक क्रिश्चियन मिशनरी हाई स्कूल में किया गया। जगह वास्तव में बड़ी अच्छी थी। एकान्त था और सब इन्त-ज़ाम भी अच्छा था। एक-एक कमरे में करीब २५ यात्री थे। यह

यहाँ के लड़कों की डॉरमेटरी थी। मगर हमसे तोएक बड़े अच्छे होटल का खर्च लिया गया था। असल में यह तो अच्छी खासी लूट थी। परन्तु हमें यह सब बरदाश्त करना पड़ा, क्योंकि और कोई चारा भी नहीं था।

जिस शाम को हम लोग हाँगकाँग पहुँचे उस रात को खाना खाकर और गप्पें हाँककर सो गये। दूसरे दिन उठे। नहा-धोकर नाश्ता किया और डाक्टरी जाँच के लिए वहाँ के बड़े होटल में आये जहाँ और भारतीय ठहरे हुए थे। उसके बाद मैं चन्द साथियों के साथ शहर देखने चल पड़ा।

हाँगकाँग एक टापू है। यह एक छोटी सी जगह है और अंग्रेज़ों के अधिकार में है। यह शहर दो हिस्सों में बँटा हुआ है। बीच में समुद्र है। एक किनारे से दूसरे किनारे पर जाने के लिए एक बड़ी नाव में बैठना पड़ता है। इतनी बड़ी नाव में बैठने का पहला मौका था। इसमें बैठकर हम लोग शहर गये और दुकानें देखीं। मेरे मित्रों ने कुछ चीज़ें ख़रीदीं। मालूम ऐसा होता था कि यहाँ के भाव काफी सस्ते थे। मैंने भी चन्द तस्वीरें और पोस्टकार्ड खरीदे और मित्रों को भेज दिये। सारे दिन सैर की और फिर अपने ठिकाने आये और ख़ाना खाकर सो गये।

दूसरे दिन इस स्कूल का एक विद्यार्थी हमारे पास आया और बातें करने लगा। यह लड़का दसवीं में पढ़ता था और भला मालूम देता था। उसने हमें बताया कि वह वहाँ के एक बड़े अधिकारी का सुपुत्र है। हमें अपने घर ले जाने का निमन्त्रण दिया और कहा कि वह हाँगकाँग की अच्छी-अच्छी चीज़ें दिखायेगा। मैंने अपने दो मित्रों की सलाह लेने के लिए उनकी तरफ़ देखा और आन की आन में ही उन्होंने उसका निमं-त्रण मंजूर कर लिया। हम चारों चल पड़े। नाव के पास आये और

करीब १५ मिनट में हम दूसरे किनारे पर जा पहुँचे।

हमारा वह नया चीनी मित्र हमारा पथ-प्रदर्शक बना हुआ था और हमें नई-नई चीज़ों की तरफ इशारा करके बताता जाता था। वहाँ भारतीय भी काफी हैं। सिपाही तो वहाँ सिख ही अधिक हैं। व्यापारी भी कुछ सिन्धी हैं और कुछ मारवाड़ी हैं। थोड़ी देर बाद वह हमें अपने घर ले गया, जो एक अच्छी बस्ती में था। उसका घर एक बड़ा अच्छा बंगला था जोकि दो मंज़िल का था और अंग्रेज़ी ढंग पर सजा हुआ था। उस समय घर में और कोई नहीं था, सिवाय दो नौकरों के। हम चारों ने बैठकर खाना खाया और फिर सैर को निकल पड़े। वह चीनी लड़का हमारे साथ ही रहा। फिर हमें स्कूल छोड़ कर अपने घर चला गया। हम नहाये, फिर सायंकाल का भोजन खाया। थोड़ी देर तक बातचीत की, फिर सो गये।

चौथे दिन उस चीनी मित्र ने हमें बिजली की रेलगाड़ी से पहाड़ पर ले जाने का वायदा किया। वह सवेरे नौ बजे स्कूल आ गया। हम चारों मित्र पहाड़ी पर चढ़ने के लिए चल पड़े। स्टेशन पर पहुँच कर सब ने अपना-अपना टिकिट लिया और रेल में बैठ गये। रेल चल पड़ी और तेज़ी से चलने लगी। जब मैंने नीचे देखा तो बड़ा अच्छा लगता था। डर भी महसूस होता था। आख़िर हम पहाड़ की चोटी पर चढ़ गये और रेल से उतर पड़े। स्टेशन के पास एक छोटा-सा होटल था। हमारे मित्र ने हमें चाय की दावत दी। चाय पीकर हम लोग घूमने चल पड़े।

यह जगह घूमने के लिए सबसे अच्छी मानी जाती है, बम्बई में जैसे चौपाटी और नई दिल्ली में इण्डिया गेट; परन्तु यहाँ कई फोटोग्राफर इस तरह बैठे थे जैसे आपने देहली में जामा मस्जिद और लाल-किले के पास देखे होंगे। एक फोटोग्राफर हम से फोटो खिचवाने का

आग्रह करने लगा। मैंने साथियों से सलाह ली और कहा कि सब को बराबर पैसे देने होंगे। बात सब को अच्छी लगी और फोटो खींचा गया। उसकी एक कॉपी मेरे फोटो-संग्रह में है। कभी आपको दिखाऊँगा।

मैंने ऊपर लिखा है कि इस पहाड़ी पर अंग्रेज़ों ने बड़े अच्छे-अच्छे मकान और सड़कें बनवाई हैं। इन सड़कों पर बिजलियाँ लगी हुई हैं। रात को जब सब बत्तियाँ जलती हैं तो इनकी छाया समुद्र में बड़ी भली मालूम देती है। इस दृश्य का 'पिक्चर पोस्ट-कार्ड' भी मैं लाया था जो मेरे फोटो संग्रह में है।

पाँच रोज हम लोग यहाँ रहे। परन्तु यहाँ समय अच्छी तरह से कटा। पाँचवें रोज़ हम सब लोग सामान बाँधने में लग गये। तथा सायंकाल सामान को जहाज पर लादने के लिए दे दिया। हम रात को १२ बजे जहाज पर चढ़े जिसका नाम एस० एस० जनरल मीग्स था। यह अमेरिक लाइन्स का ट्रुपशिप था जिसको यात्री जहाज बना लिया गया था। यह एक बहुत बड़ा जहाज है। इसमें क़रीब पाँच हज़ार यात्री होंगे, जिनमें से अधिकतर चीनी भाई थे।
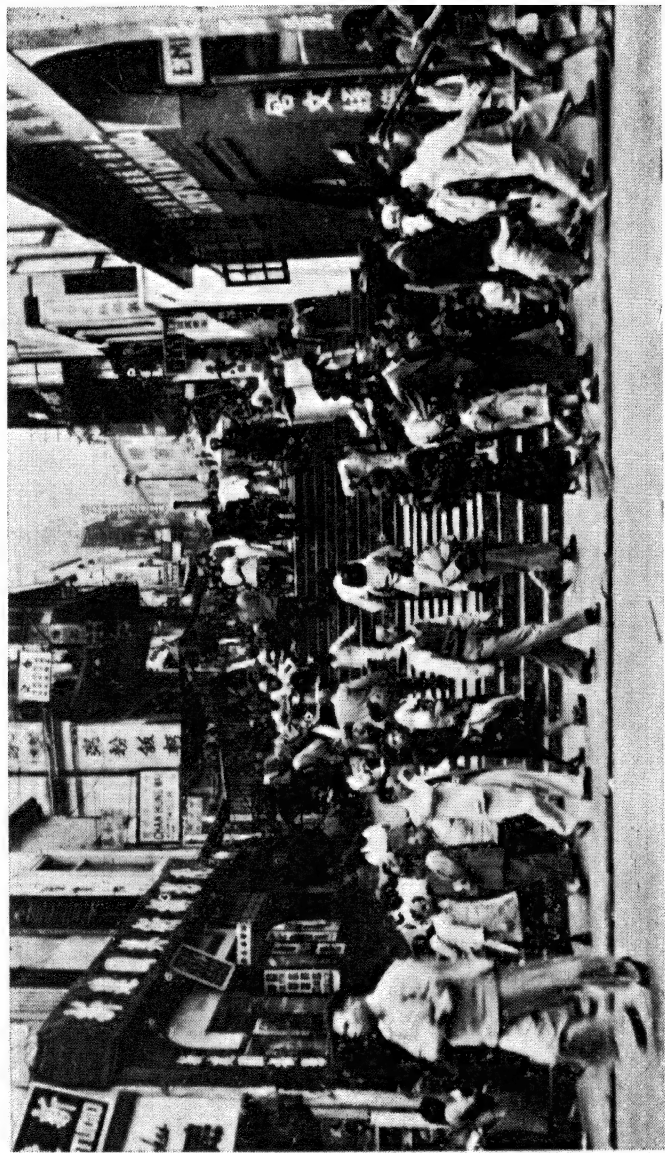
हांगकांग शहर का एक बाज़ार

K. Ramchandev.

: ६ :

हाँगकाँग से सानफ्रान्सिसको

उस समय क़रीब रात के ११ बजे होंगे। हम लोग अपना-अपना सामान लदवाकर अपने जहाज एस० एस० जनरल मीग्स के पास जा पहुँचे। इसके सामने एक बड़ा पहाड़ था। उस पर मकान बने हुए थे। इन मकानों की बत्तियों का साया समुद्र के पानी में बड़ा भला मालूम होता था। हमारा जहाज भी खूब जगमगा रहा था। शुरू में यह एक युद्धपोत था परन्तु लड़ाई के बाद इसे यात्री-पोत बना दिया गया था, इसने प्रशान्त महासागर में जापानियों के ख़िलाफ़ लड़ाई लड़ी थी और जीती भी थी। इसका वजन २५ हज़ार टन से भी अधिक था और यह बहुत बड़े जहाजों में से है। इसकी औसतन रफ्तार २१ मील फी घण्टा है जो काफी अच्छी कही जाती है। लड़ाई के दिनों में इसमें करीब १० हज़ार सिपाही आ जाते थे, परन्तु मुसाफिर ५ हज़ार आते हैं।

हाँगकाँग से करीब ३ हजार चीनी चढ़े थे, जिनमें से अधिकतर अमेरिका जा रहे थे। शेष जापानी, अंग्रेज़, अमरीकन, हवाईन और भारतीय थे। हमारी तादाद क़रीब २०० की होगी। अधिकतर हम विद्यार्थी थे। इस जहाज में सिर्फ दो श्रेणियाँ थीं—जैसे हर जहाज में होती हैं। प्रथम श्रेणी तो एक तरफ ऊपर के दो डैकों में थी, शेष में जहाज का स्टोर इंजन और हमारी रॉयल क्लास थी। हमारी क्लास क्योंकि बड़ी थी इसलिए पाँच मंज़िल घेरे हुए थी। हमारी मंज़िल बद-क़िस्मती से सबसे नीचे थी, पानी के अन्दर। रोशनदान कुदरती नहीं थे। हवा मशीनों के जरिये फूँकी जाती थी परन्तु कभी कभी जब ये रोशनदान खराब हो जाते थे तो बड़ी तकलीफ़ होती थी। इस मंज़िल

में न पाखाना था और न गुसलखाना । पाखाना और नहाने के लिए हमें अपनी ऊपर वाली मंज़िल पर जाना पड़ता था । हाँ, इस मंज़िल पर एक बिजली का फव्वारा जरूर लगा हुआ था जिसमें से पीने का पानी बटन दबाने से निकलता था। परन्तु कभी-कभी यह भी बन्द हो जाता था, आखिर मशीन जो है ।

यह पूरी मंजिल जिसमें कहवा था, भारतीयों को ही मिला हुआ था। एक तरफ कुछ सामान ज़रूर रखा हुआ था, परन्तु हमारी आबादी में कोई दखल नहीं देता था। हम लोगों के बिस्तर दो मंजिले थे, जैसे आपने देखे होंगे । ऊपर वाले बिस्तरे पर कूदकर चढ़ा जाता था। चादर, तकिये और कम्बल सब जहाज की ओर से ही मिलते हैं। यह सोचकर कि ऊपर वाला बिस्तर अधिक साफ और एकान्त में होगा, मैंने वही एक ले लिया और अपने नाम लेबिल लिख कर टाँग दिया।

जिस समय जहाज़ में घुसा तो बड़े चाव से अन्दर आया। हाथ में छोटा बैग था, जिसमें जरूरी काग़ज़ और पासपोर्ट था। साथ-साथ सामान लिये एक कुली था। वह मुझे चार ज़ीने नीचे ले गया और वहाँ छोड़ दिया। वहाँ कुछ और भी साथी थे। परन्तु यहाँ की अजीब बदबू को सूँघकर अमेरिका जाने का सब मज़ा किरकिरा हो गया। यह बदबू जहाज वालों के लिए बदबू नहीं थी । यह तो कीड़े मारने की दवा थी परन्तु क्योंकि अधिक डाली हुई थी और मैंने पहले कभी नहीं सूँघी थी, इसलिए मेरे लिए मुसीबत थी, मगर अब तो यहीं रहना था और किया क्या जाता। अपना बिस्तर और सामान ठीक लगाकर, नाक से रूमाल लगाकर मैं तो ऊपर भागा।

हमारी श्रेणी के लिए कोई डैक नहीं था । जहाज के ऊपर कोई ठीक-ठीक खुली जगह नहीं थी। ऐसा सभी मुसाफिरी जहाजों में होता

है परन्तु वह तो मुसाफिरी जहाज नहीं था और वह भी ढके हुए न होने की वजह से बेकार थी। नीचे जाने से मेरा मन घबराता था। मैंने निश्चय किया कि नीचे तब ही जाऊँगा जब बहुत जरूरी होगा। मेरे पास कोई कम्बल नहीं था और न कोई अतिरिक्त सूट था। नीचे का कम्बल लाने का हुक्म नहीं था। बड़ी मुसीबत थी कि रात को बिना कम्बल कैसे सोया जाय। खुशकिस्मती से दूसरे दिन मेरी मुलाक़ात एक चौधरी जाट से हुई जो माताजी के गाँव के पास से आता था। मिलकर हम लोग बड़े खुश हुए। वह मेरे नाना नानी और मामों को भी जानता था। बातों बातों में जिक्र आगया, नीचे की बदबू का। वह कहने लगे कि मेरा भी नाक में दम आया हुआ है और मैं तो ऊपर कम्बल ले आया हूँ और यहीं रात में सोना है। उनके पास मिलिटरी का एक कम्बल था और एक पुराना ओवरकोट था। मुझे भी बैठने को कहा और अब मैं भी इस्तेमाल कर सकता था। यह सुनकर ज़रा होश आया। इस दिन से अक्सर हम दोनों साथ-ही-साथ रहते थे। यह साहब शाकाहारी थे। इन्हें भी माँस से नफरत थी। इसलिए हम लोग फल, चाय, कॉफी, आलू, रोटी इत्यादि से पेट भर लेते थे। डैक पर बैठने की कोई अच्छी जगह नहीं थी। इसलिए मशीनों पर और इधर-उधर बैठकर ही समय कट जाता था। रात को जब बारिश होती थी तो किसी मशीन की सायामें बैठकर ही समय काट देता था। अगर सच पूछो तो यहाँ ही "रघुपति राघव राजाराम" भजन का मैंने सार जाना है। रात दिन जब अकेला बैठा रहता था तो इसे ही जपा करता था। इसके जपने से मुझे शान्ति मिलती थी और कोई मुश्किल नज़र नहीं आती थी। इसी तरह जैसे-तैसे रातें काटीं।

इस जहाज में खाने की बड़ी तकलीफ़ रही क्योंकि यह फ़ौज के लिए था। इसमें क़रीब चार हज़ार यात्री दूसरी श्रेणी में थे। इसलिए

सब के बैठने की जगह नहीं थी। खाने के लिए दो पाली बना दी गई थीं और सब को पंक्ति में लगकर खाना लेना पड़ता था। इस तरह खड़े होकर खाना मैंने जीवन में पहली बार लिया था। पहले पहल तो बड़ा अखरा परन्तु बाद में आदत पड़ गई। मैं तो सिर्फ सब्जियाँ ही लेता था। दूध, कॉफी, चीनी चाहे जितनी हो इसी तरह पेट भर लेता था।

तीन चार दिन तो इसी तरह निकल गए। पाँचवें दिन मैंने अपने साथियों से बातचीत की जो शाकाहारी थे। मैंने उनसे कहा कि अगर हम मिलकर कप्तान से मिलें और एक भारतीय शाकाहार हम लोग रोज़ तैयार कर लिया करें तो कैसा रहे। यह सुझाव उन्हें पसन्द आया। परन्तु मैंने पहले कभी कप्तान आदि से बातचीत नहीं की थी। अतः मैंने सोचा कि किसी तजुर्बेकार आदमी को साथ ले लें तो अच्छा रहे। सौभाग्य से हमारे साथ एक विद्यार्थी ऐसे भी थे जो पहले अमेरिका हो आये थे और अब वह सिनेमा के लिए हालीवुड जा रहे थे। वह राजी हो गए और हम पाँच प्रतिनिधि कप्तान के पास गए। उसने पहले तो इन्कार कर दिया परन्तु फिर इस शर्त पर मान गया कि अगर हम एक-एक डालर जमा करें और इसे अतिरिक्त श्रम मूल्य के रूप में दें तो प्रबन्ध हो सकेगा। हमने मंजूर कर लिया। फिर एक सब्ज़ी रोज़ भारतीय ढंग की बनने लगी। तब कुछ पेट भरने लगा। यह सज्जन वही थे जो तुम्हें याद हो, मथुरा के स्टेशन से देहली तक हमारे साथ आये थे। बड़े लम्बे तगड़े और भारी से थे। उनसे मैंने तुम्हारा परिचय भी कराया था। इनका नाम श्री भाटिया है।

जब हमारा जहाज चीनी सागर में आया तो समुद्र में बड़ा तूफान आया हुआ था। इतना बड़ा जहाज भी एक छोटी नाव की तरह समुद्र की लहरों से आसानी से मुक़ाबिला न कर सका। इसकी रफ़्तार कम हो गई और कभी-कभी पानी की उत्ताल तरंगें पाँचवीं मंज़िल तक आ

जाती थीं। मेज़ पर रखा गिलास भी लुढ़क पड़ता था। जहाज के अन्दर चलना-फिरना भी कठिन हो गया था। जिधर देखो उधर ही यात्री लोग उल्टियाँ करते दीखते। क़रीब-क़रीब सभी समुद्री बीमारी के शिकारी हो गए थे। मेरी हालत भी अच्छी न थी। एक तो खाना मुझे वहाँ का पसन्द नहीं आया था। अब तो दूध भी न पिया गया। हाँ, सन्तरा या ऐसा ही फल तो ज़रूर खा लेता था। पूरे ४८ घण्टे ऐसा ही हाल रहा। चीन सागर के गुज़रने के बाद तो समुद्र शान्त और गम्भीर था और बड़े जहाज की गति बड़ी मन्दी रही।

शान्त महासागर में कई सुन्दर टापू हैं। इनको हवाई द्वीप कहते हैं। मनीला इनकी राजधानी है। एक सप्ताह बाद हमारा जहाज मनीला के बन्दरगाह पर आ लगा। यहाँ कुछ यात्री उतरे परन्तु अधिक न थे। इन यात्रियों में कुछ भारतीय भी थे जो सीधे कलकत्ते से आए थे। यहाँ हमारा जहाज क़रीब ८ घंटे तक ठहरा रहा। मैंने कुछ पत्र भारत भेजे और उत्प्रवास अधिकारी की इजाज़तसे हम भारतीय लोग नीचे उतरे। एक बस किराये पर करके मनीला शहर देखने गए। यह बड़ा सुन्दर शहर है। हर तरफ मनमोहक पहाड़ और पहाड़ों पर हरे-हरे वृक्ष।

शायद तुम मनीला के बारे में अधिक जानकारी प्राप्त करना चाहो इसलिए लिखता हूँ। यह फिलिपाइन गणराज्य की राजधानी है और फिलिपाइन द्वीप का सब से बड़ा बन्दरगाह यही है। इसकी जनसंख्या १९४९ की जनगणना के मुताबिक १४३,९०६ है। यह द्वीप १७६२ से पहले स्पेन के अधिकार में थे। परन्तु १७६२ में अंग्रेज़ों ने इस शहर पर क़ब्ज़ा कर लिया था। अंग्रेज़ों का क़ब्ज़ा दो साल से अधिक न रह सका। यह शहर फिर स्पेन के मातहत हो गया। परन्तु स्पेन-अमेरिकन युद्ध के बाद यह शहर अमेरिकनों के हाथ में आगया और अभी तक है। दूसरे विश्व-युद्ध में यहाँ बड़ी घमासान लड़ाई हुई और १९४२-१९४५

तक यह जापानियों के क़ब्ज़े में रहा। जापान की हार के बाद इधर फिर अमेरिकनों का कब्ज़ा हो गया और आजकल यह भारत की तरह गणराज्य है। यहाँ विश्वविद्यालय भी हैं जिनमें से एक को फिलिपाइन विश्वविद्यालय कहते हैं। मेरे एक मित्र डा० सक्सेना यहाँ दो साल पढ़ाने के लिए आये थे और इस विश्वविद्यालय के पुस्तकालय का सारा भार हमारी मिचीगन यूनीवर्सिटी उठाती है।

अपने जीवन में पहली बार कोका-कोला भी मैंने मनीला बन्दरगाह पर ही पिया। इस बन्दरगाह से एक फिलिपाइन का आरकैस्ट्रा भी चढ़ा था जिसने सानफ्रान्सिसको आने तक तीन बार फिलिपाइन संगीत सुनने का मौका दिया। शाम को क़रीब ६ बजे हमारा जहाज़ यहाँ से चल पड़ा। अब की बार हम लोग होनोलूलू की तरफ़ चल पड़े।

आपको यह नाम वड़ा अज़ीब लगता होगा। जब मैंने पहली बार सुना तो मुझे भी अजीब-सा लगा। हम लोग यहाँ एक सप्ताह बाद पहुँच गए। शायद आप इस शहर के बारे में जानना चाहो इसलिए संक्षेप में लिखता हूँ। होनोलूलू हवाई प्रदेश की राजधानी है। इसकी जनसंख्या २५७,६९६ है। हवाई द्वीप का यह एक ख़ास बन्दरगाह है। यह एक बड़ी ही सुन्दर जगह है। यहाँ अमेरिकन लोग छुट्टियाँ मनाने आते हैं। नहाने के लिए समुद्र है जिसे लंच कहते हैं। यहाँ गन्ना, अनन्नास, कॉफ़ी और फल बड़े होते हैं। शहर तो छोटा है परन्तु समुद्र बहुत है। हम यहाँ उतर नहीं सके क्योंकि यहाँ के डॉक कर्मचारी हड़ताल पर थे। जहाज़ भी दो घण्टे से अधिक न ठहर सका।

जब हमारी यात्रा समाप्त होने में दो दिन रह गये तो हिन्दुस्तानी भाइयों और बहिनों की एक सभा हुई। इसमें प्रदेशीय भाषाओं में गाने गाए गए, खेल तमाशे भी हुए। परन्तु एक अजीब बात देखने में आई। कुछ लोग भारतीय सरकार के इस कमज़ोर इन्तज़ाम के ख़िलाफ़ एक

प्रस्ताव पास करना चाहते थे और इसको शिक्षा मंत्रालय को भेजना चाहते थे। जहाँ तक प्रस्ताव पास करने की बात थी वह तो सभी ने मंजूर कर ली परन्तु इसमें जो शब्द इस्तेमाल किए गए थे उन पर मत-भेद खड़ा हो गया। यह मतभेद यहाँ तक बढ़ा कि गालियों पर नौबत आगई और फिर घूसे भी चलते-चलते रह गए। यह गरमा-गरमी बंगालियों और बिहारियों में अधिक हुई। वास्तव में देखा जाय तो यह बड़े दुःख की बात थी। यह क़सूर उनका नहीं था, इसकी नींव तो अंग्रेज़ों ने रखी थी। आज भारत में अगर बहुत दुःख की बात देखी जाती है तो वह है प्रान्तीयता, जातीयता और भेद-भाव। इसके अलावा हम सबकी भाषा भी अलग-अलग है। अगर एक भाषा है तो वह है अंग्रेज़ी, दूसरे मुल्क वालों की थोपी हुई, ग़ुलामी की प्रतीक। ख़ैर, किसी तरह बीच-बिचाव हुआ और आख़िर यही फ़ैसला हुआ कि प्रस्ताव ही पास न किया जाय।

आज यात्रा में चन्द बातें ऐसी भी रहीं जो कभी भुलाई नहीं जा सकतीं। जब जहाज़ चलता हो तो शाम को ऊपर जाकर डूबते सूरज का दृश्य कितना सुन्दर लगता है। सूरज का उदय भी उतना ही मनोहर है। जब सूरज डूबता है तो चारों ओर सुर्खी फैल जाती है और उसकी परछाँई पानी पर पड़ती है जो बहुत ही सुन्दर मालूम देती है। चाँदनी रात भी कम सुहावनी दिखाई नहीं देती। जहाज़ चल रहा है। चाँद की चन्द्रिका खिल रही है जैसे बेले के श्वेत फूल। कोसों तक सफेद लहरें ऐसी लगती हैं जैसे चाँदी की झिलमिलाती लहरिया चादर हो। जीवन में यह मेरा पहला मौक़ा था। जब कि मैंने यह जाना कि क़ुदरत के इतने सुन्दर नज़ारे हो सकते हैं। जब मैं प्रकृति के विराट् सौंदर्य देखता था तो मुझे ईश्वर याद आता था और मेरा मन

कह उठता था कि जिस ईश्वर ने यह सब-कुछ बनाया है वह कितना सुन्दर होगा।

हमारे साथ सरदारजी भी कई थे। परन्तु उनमें से एक ही बड़े दिलचस्प थे। वह अपने को कश्मीरी कहते थे। उम्र २० साल से कम न होगी। दुबला-पतला बदन और ज़रा सीधे-सादे से नज़र आते थे। इनको हाथ देखने का बड़ा शौक़ था। शुरू-शुरू में जब हम लोगों को पता लगा तो कुछ सिर्फ़ मज़ाक के तौर पर, कुछ वाकई गम्भीर होकर उनके पास जाने लगे और अपना-अपना हाथ दिखाकर पूछने लगे कि क़िस्मत में क्या लिखा है। वह उल्टी-सीधी हाँक देते थे। यह सिलसिला दो चार दिन चला; परन्तु जब और यात्रियों को पता लगा तो वह सदा ही सरदारजी के चारों तरफ बैठे-बैठे अपना हाथ दिखाते रहते। उनमें से अधिक लड़कियाँ होती थीं। बड़ा मज़ाक उड़ता था और सरदारजी जैसा मौक़ा देखते तक़दीर का हाल बता देते थे।

भारतीयों के इस दल में चन्द बड़े मज़ाकिया भाई भी थे। संयोग से एक दिन रात को एक बजे भूख लगने लगी। मगर खाना कहाँ था। जहाज़ की दूकान भी बन्द थी। भूखे लोगों में से एक खान साहब भी थे, जो लखनऊ से आये थे और दूसरे शर्मा साहब थे जो शायद लखनऊ या इलाहाबाद से आये थे। इन दोनों के बिस्तर भी पास-पास थे, नीचे की लाइन में। उनके ऊपर के बिस्तर पर एक मदरासी सोये हुए थे। इनकी उम्र क़रीब ४५ साल होगी। इन साहब के सिहराने कई डिब्बे रखे हुए थे, जिनमें मिर्च मसाले और बादाम भी थे। आप जानते हैं कि मदरासी मिर्च और मसाले खूब खाते हैं और वह रोज डाल डाल कर खाया करते थे। खान साहब ने एक दिन बादाम खरीदते देख लिया था। परन्तु यह मालूम नहीं था कि कौनसे डिब्बे में बादाम थे। वह आहिस्ता से ऊपर चढ़े और डिब्बे देखने

लगे। उनका हाथ उस पर पड़ा जिसमें कि मिर्चे थीं। मिर्चें लाल पिसी हुई थीं। सब बिखर गईं और कुछ मदरासी भाई भी जाग पड़े। कुछ नीचे सोये हुओं पर भी आ गिरीं। दो मिनट तक तो कुछ भी नहीं हुआ, खान साहब दूसरा डिब्बा जिसमें बादाम थे लेकर चलते बने। थोड़ी देर बाद जब मिर्चें लगने लगीं तब वे लोग उठ खड़े हुए और बड़ा मज़ा आया। यह दिलचस्प घटना सानफ्रान्सिसको आने के दो दिन पहले घटी।

एक बात मैंने और बड़े महत्त्व की देखी। जहाज़ से ही कुछ लोग सोचने लगे कि वहाँ तो बिना माँस खाये, सिगरेट या शराब पिये बग़ैर जीना ही मुश्किल है। बहुत से भाई जो पहले माँस नहीं खाते थे, न शराब पीते थे, शराब भी पीने लगे और माँस भी खाने लगे। मैंने ऐसा हाल सुभाषचन्द्र बोस की जीवनी की किताब में पढ़ा था। परन्तु सुभाषबाबू ने शुरू नहीं किया। मैंने भी कहा यह तो मानवीय कमज़ोरी है। इसलिए मैंने और भी कसकर कमर बाँध ली कि और कुछ भी हो जाय न माँस खाऊँगा, न शराब, न सिगरेट ही पीऊँगा। मुझे खुशी है कि ईश्वर ने मेरी अभी तक सहायता की है और आज तक मैंने यहाँ रहते हुए भी इन चीज़ों का इस्तेमाल नहीं किया और उनका प्रयोग न करने से कोई शारीरिक या मानसिक हानि नहीं हुई। इसलिए उनका उपयोग सर्वथा त्याज्य है। यहाँ मैं यह भी लिख देना चाहता हूँ कि पश्चिम के बारे में भारत में अजीब-अजीब कहानियाँ छपी हुई हैं, परन्तु वह सत्य नहीं। मनुष्य जहाँ जैसी तरह रहना चाहे रह सकता है, यह मनुष्य पर ही निर्भर होता है।

हमारी जहाज़ की यात्रा समाप्त होने वाली थी। उस रात को मैं नीचे ही सोया था। इसका सबसे बड़ा कारण था कि सामान वग़ैरा ठीक करना था और ऊपर सर्दी अधिक पड़ने लगी थी। इसके अलावा

सभी मित्रों से मिलना था और उनके पते भी लेने थे। उस रात दे ा जाय तो हम ठीक तरह से सोये भी नहीं। क़रीब दो बजे तक तो बातचीत ही करते रहे। आखिर मै तो अपने बिस्तर पर आ पड़ा और आँख लग गई। क़रीब पाँच बजे मेरी आँख खुल गई जबकि एक भाई चिल्लाते हुए आये कि सानफ्राँसिसको का सुनहरी पुल नज़र आने लगा। मैं और कई भाई जल्दी-जल्दी कपड़े पहन कर ऊपर गये तो देखा चारों तरफ धुँध छायी हुई है और कुछ बिजलियाँ भी चमक रही हैं। परन्तु मालूम करने पर पता चला कि अभी बन्दरगाह बहुत दूर है। हम नीचे आये और तैयारी में लग गये। मैं पाखाने गया, हज़ामत बनवाई और नहाकर नीचे आया और कपड़े पहनने लगा।

क़रीब सात बजे सभी यात्री लोग अपने-अपने सूटों में दिखाई देने लगे। अधिकतर हैट भी पहने हुए थे। कुछ सिगार, सिगरेट और पाईप भी पीने लगे थे। मैं यह देखकर मन में कुछ सोचने लगा। परन्तु मैंने तो यह निश्चय किया था कि शेरवानी और खद्दर के कपड़ों में ही उतरूँगा। यह देखकर मुझे बड़ी खुशी हुई कि क़रीब तीन और भी इसी पोशाक में तैयार हुए।

सबेरे के क़रीब दस बजे होंगे जब हमारा जहाज़ सानफ्राँसिसको के बन्दरगाह में जाकर खड़ा हुआ। हमारे स्वागत के लिए भारतीय दूतावास से शिक्षा मन्त्री और उनके सहायक जहाज़ में एक छोटी किश्ती के ज़रिये आ चढ़े थे। वह सब हम लोगों से मिले और हमें ज़रूरी सूचनायें दीं। उनमें से मैं एक को पहले ही जानता था। वह श्रीमती अरुणा आसफ अली के भाई थे।

क्योंकि यात्री अधिक थे और सब यात्रियों को डाक्टरी करानी थी इसलिए शाम के छः बज गये। हर यात्री के डाक्टरी प्रमाण-पत्र और अन्य काग़ज़ात देखे गये जो हम लोगों ने अमरीकी दूतावास से

लिये थे। उत्प्रवास प्राधिकारी ने जब इन सब ज़रूरी काग़ज़ों का व हमारे पास पोर्ट का अच्छी तरह मुआयना कर लिया तब नीचे उतरने की आज्ञा दी।

चुँगी वालों से पीछा छुड़ाकर मैंने और चन्द अन्य साथियों ने फ़ैसला किया कि कौनसे होटल में ठहरना है। कुछ लोग तो बड़े महंगे होटलों में चले गये क्योंकि उनका ख़र्चा भारत सरकार ने दिया था। परन्तु जो लोग इतना पैसा ख़र्च नहीं करना चाहते थे, वह हमारे साथ एक गोल्डफील्ड होटल में आ गये। यह होटल गुजरातियों का था जो यहाँ के निवासी हो गये थे। होटल तो छोटा था परन्तु घर जैसा ही बना लिया था। यहाँ खाना भी भारतीय ही मिला।

: ७ :

सानफ्रान्सिसको से ऑन आर्बर

९२७ सिल्वन एवेन्यू
एन० आर० वर्ग
मिचीगन (यू०एस०ए०)
ता० २९ सितम्बर, १९५३

उत्प्रवास और चुङ्गी अधिकारियों से शाम को क़रीब ४ बजे छुटकारा मिला। उस समय सूरज खूब चमक रहा था। ऐसा मालूम होता था कि अभी दिन कई घण्टे रहने वाला है। मेरा अन्दाज़ा सही निकला जब मुझे मालूम हुआ कि यहाँ सूरज पौने आठ बजे छिपता है। जिन साथियों ने गोल्ड-फ़ील्ड होटल में ठहरने का फ़ैसला किया था वह अपना-अपना सामान लेकर चुङ्गी कार्यालय से बाहर आये, जहाँ टैक्सियों की एक कतार खड़ी थी। इनमें कई तरह की टैक्सियाँ थीं परन्तु यैलौ कैब्स नामक बहुत थीं। श्री भाटिया हमारे ही साथी थे या यों कहिये कि वह हमारे नायक थे। इन्होंने ही टैक्सी वालों से बातचीत की और हम लोग टैक्सियों में बैठकर गोल्ड-फ़ील्ड होटल के सामने आ गये। चुङ्गी कक्ष से बाहर आकर जब मैं सड़क के किनारे खड़ा हुआ तो मुझे पहली बार यह भास हुआ कि मैं एक नये देश में खड़ा हूँ। सड़कें चौड़ी और साफ़ थीं। कारें बड़ी तेज़ी से दौड़ रहीं थीं। सड़कों के चौराहों पर बजाय ट्रैफ़िक पुलिस के ट्रैफ़िक की लाल पीली और हरी बत्तियां थीं, जैसी कि आपने कलकत्ते में देखी होंगी। बाज़ारों में बड़ी

सजी दुकानें थीं। प्रदर्शन खिड़कियाँ जो यहाँ सभी दुकानों में होती हैं, बड़ी सजी हुई थीं। कपड़ों की दुकानों की प्रदर्शन खिड़कियों में औरतें और मर्दों के नमूने तरह-तरह के सूट पहने खड़े थे। कई फलों की दुकानें भी देखीं जिनमें फल बड़े करीने से लगे हुए थे। नारंगियाँ, अंगूर, अनन्नास और सेव तो बहुतायत से नज़र आते थे। मुझे तो यह सब स्वप्न सा ही नज़र आया। खड़े-खड़े ऐसा मालूम होता था जैसे मैं अब तक भी जहाज़ में चल रहा हूँ।

हमारी टैक्सी गोल्ड फ़ील्ड होटल के सामने आ खड़ी हुई। ड्राइ-वर ने दरवाज़ा खोला और मैं अपने तीन और साथियों के साथ उतर पड़ा। टैक्सी वाले ने मीटर देखकर भाड़ा बताया और श्री भाटिया ने पैसा चुका दिया। साथ में कुछ टैक्सी वाले को बख़्शीश भी दी। यहाँ बख़्शीश यानो टिप १०% देनी पड़ती है। अगर टैक्सी का किराया एक डालर हो तो १० सेंट टिप देना चाहिए। अपना-अपना सामान लेकर हम होटल के लॉबी में आये और हमारा स्वागत दो भारतीयों ने किया। उनमें से एक क़रीब ५५ साल के होंगे और दूसरे क़रीब ३० साल के नोजवान। इस होटल के मालिक बड़े बुजुर्ग थे। यहाँ क़रीब ३० साल पहले आये थे और गुजराती भाई थे।

थोड़ी देर बाद हमें अपने-अपने कमरों में पहुँचा दिया गया। इस होटल में, जैसे सभी होटलों में होता है, दो तरह के कमरे थे, एक सिंगल और दूसरे डबल। मैं और मेरे एक साथी जिनका नाम सच्चिदानन्द शर्मा है, एक ही कमरे में ठहरे थे। यह महाशय बम्बई से आये थे और गुजराती में अच्छी तरह बातें करते थे। यह मराठी भी भली प्रकार बोल लेते थे। बड़े मज़ाकिया और खुशमिजाज़ थे।

जब हम अपने कमरे में आये तो ज़रा आराम किया। हाथ-मुँह धोकर जिसका कमरे में ही इन्तज़ाम था, बाज़ार जाने का प्रोग्राम

बनाया। मैं तो और आराम करना चाहता था। मेरे ये साथी भारत से कोई अंग्रेज़ी सूट नहीं लाये थे। इन्हें एक सूट लेना था इसलिए मुझे इनके साथ ही जाना पड़ा। हम दोनों शेरवानी और चूड़ीदार पैजामा पहने हुए थे। होटल के बाहर निकले और कपड़ों की दूकानों की तरफ़ निकल पड़े। शायद आपको यह पता नहीं कि यहाँ प्रायः सभी दुकानें रेडीमेड सूटों की हैं। नाप देकर सूट तो यहाँ बहुत महँगा पड़ता है और कोई ही बनवाता है वरना सैकड़ों नाप के हज़ारों सूट बने बनाये मिलते हैं। यहाँ सूट की दूकानें बहुत बड़ी बड़ी हैं और उसी समय नापकर जो सूट पसन्द हो ख़रीदा जा सकता है। इसी तरह औरतों के भी सूट मिलते है। आपको यह भी जानकर दिलचस्पी होगी कि यहाँ की दुकानें सबेरे दस बजे से शाम को पाँच बजे तक ही खुलती हैं। इतवार को छुट्टी रहती है और शनिवार को १० बजे से १ बजे तक खुलती हैं। कोई-कोई दुकानें किसी खास मौके पर यानी जिन दिनों बिक्री अधिक होती है तो कुछ घण्टे अधिक खुली रहती हैं। वरना यह दुकानें खुलने और बन्द होने का समय निश्चित रखती हैं। यहाँ पर एक घण्टा मामूली काम करने के क़रीब ५ रुपये से दस रुपये तक मिलते हैं। कुछ को दो रुपये भी मिलते हैं। किसी को दस रुपये भी मिलते हैं। जिनकी नौकरी पक्की और अच्छी है उनको कम-से-कम २०) बीस रुपये फी घण्टा मिलता है। यहाँ कोई भी आदमी और औरत दिन में ५ घण्टे काम करके अच्छी तरह रह सकता है। नौकरियाँ आसानी से मिल जाती हैं। बेकारी तो यहाँ भी जरूर है परन्तु बहुत कम। हम लोग क़रीब १½ घण्टा बाज़ार घूमकर फिर होटल वापिस आ गये। खाना भी हमने होटल में ही खाया जो भारतीय प्रकार का था। खाना खाकर हम लोग होटल के ड्राइंग रूम में आ गये। आपस में बातचीत की, कुछ और भारतीय भी आ गये जो सानफ्रांसिसको में बहुत

दिनों से रहते थे। इनमें से एक लाला लाजपतराय के ज़माने के भी थे। उन्होंने भारत के बारे में बहुत-सी बातें पूछीं, यह भी पूछा कि हम लोग कहाँ से ग्राये हैं, क्या-क्या विषय है ग्रौर यहाँ कहाँ जा रहे हैं। वार्तालाप करते-करते १२ बज गए। फिर हम लोग ग्रपने ग्रपने कमरे में ग्राकर सो गये।

मेरी ग्राँख ग्रगले दिन सात बजे खुल गई। होटल में सब तरफ सन्नाटा था, मालूम होता था सभी लोग देर से सोये थे। ग्रभी तक सब सोये पड़े थे। मैं चुपके से उठा ग्रौर पाखाने गया, हजामत बनाई ग्रौर मुँह धोया। ८ बजे तक सब बातों से फारिग़ हो गया। मेरे साथी भी उठ चुके थे ग्रौर वह भी पाखाना जाने को तैयार थे। मैंने इस दिन ग्रंग्रेज़ी सूट पहनने का फ़ैसला किया था। ग्रपने साथ सिर्फ दो सूट लाया था। उनमें से एक ३५ रु० गज़ की गैबर्डीन का था। जीवन में यह पहला दिन था जब मैंने विदेशी ग्रौर इतना महंगा कपड़ा सिलवाया था। उस रोज़ वही पहना। मैं कपड़े पहन कर तैयार ही था कि मेरे साथी ग्रा गये ग्रौर तैयार होने लगे; क्योंकि इनको एक सूट ख़रीदना था। इनके साथ नाश्ता करके सूट ख़रीदवाने बाज़ार चल पड़ा। क़रीब दो घण्टे में एक सूट ख़रीद लाये। इसकी कीमत ५१ डालर देनी पड़ी उन दिनों यह १७५ रु० थे। ग्राज तो ग्रौर भी ग्रधिक है। हमारे ४ रु० १४ ग्राने यहां के एक डालर के बराबर होते हैं। किन्तु यहां सूट की कीमत हमारे भारत से कम होती है। यहाँ का कपड़ा भी बड़ा ग्रच्छा होता है। सूट भी बड़े ग्रच्छे सिले हुए होते हैं। मैंने यहां से क़रीब ५ सूट खरीदे जो क़रीब ५ साल तक चलते रहे।

सूट ख़रीदकर जब हम कमरे में वापिस ग्राये तो इन्होंने उसे पहना परन्तु उन्हें टाई लगानी नहीं ग्राती थी। ये बेचारे बार-बार कोशिश करते थे। परन्तु ठीक तरह न बाँध पाते थे। उन्होंने मेरी सहा-

यता के लिए कहा परन्तु मैं भी इस विषय में अधिक नहीं जानता था। मैंने चलते समय अपने मित्र से टाई बाँधनी सीखी थी क्योंकि जीवन में पहले मैंने टाई बाँधने की कोई जरूरत महसूस नहीं की थी और न मैं चाहता था। मैं तो आज भी टाई बाँधने के महत्व को ठीक नहीं समझ सका। मैं तो इसे बड़ी फिजूल सी चीज समझता हूँ। परन्तु मै सदा यहाँ टाई बाँधकर बाहर जाता हूँ। क्योंकि यहाँ का रिवाज है। तुमने अंग्रेज़ी की एक कहावत तो सुनी ही होगी:—,'Do in Rom as Roman's do' मैंने उनकी सहायता की और टाई की गाँठ इस बार कुछ संतोषजनक रही। वह भी टाई बाँधने को एक मुसीबत समझते थे। वह बेचारे इतने परेशान थे कि जब वह कमीज उतारते थे तो टाई की गाँठ को ढ़ीली करके कालर में ही रहने देते थे ताकि फिर बाँधनी न पड़े। इनकी टाई बाँधने का भी बड़ा मज़ाक रहा।

इस रोज़ ११ सितम्बर था। शाम को हमें भारत सरकार और केलीफोर्निया विश्वविद्यालय की ओर से आयोजित किये गये एक स्वागत समारोह में शामिल होने बर्कले जाना था। हमारे होटल से बर्कले काफी दूर था। परन्तु होटल वालों ने और भारत सरकार के शिक्षा सचिव ने वहां जाने का रास्ता अच्छी तरह बतला दिया था। स्वागत सभा शाम को ७ बजे थी। पूरा दिन पड़ा था, कहां जाँय ? होटल वालों ने हमें सुझाया कि क्यों न हम लोग टूरिस्ट-बस लेकर सानफ्रांसिसको शहर की ऐतिहासिक और दूसरी प्रमुख इमारतें देखें। सुझाव निहायत ही नेक और स्वागत योग्य था। हम लोग क़रीब आठ की टोली में टूरिस्ट-बस-स्टेशन की तरफ़ चल पड़े। रास्ता तो मालूम नहीं था परन्तु पूछते-पूछते स्टेशन पर आ पहुँचे यहां की टूरिस्ट बसों पर टूरिस्ट गाइड भी खड़े रहते हैं। उनमें से एक हमारी तरफ लपका और हमसे पूछ बैठा कि हमें क्या-क्या देखना है उनके पास दो तरह के टूरिस्ट थे। एक तो

आधे दिन के दूसरे पूरे दिन के। इन घुमक्कड़ों का किराया भी उसके ही मुताबिक था। हमने आधे दिन का टूरिस्ट लेने का निश्चय किया। मुझे ठीक याद नहीं कि हमें क्या देना पड़ा। परन्तु यह दस डालर (५० रुपये) से अधिक नहीं था। टूरिस्ट गाइड ने हमारे टिकटों का भी इन्तज़ाम करा दिया और हम ६-३० बजे की बस में जा बैठे। बस में कुछ और भी यात्री थे जिनमें से अधिकतर अमरीकन थे। ठीक ६-३० बजते ही बस चल पड़ी।

शायद आप यहाँ की बसों के बारे में जानना चाहो इसलिए लिखता हूँ। यहाँ क्योंकि आबादी कम है इसलिए लेबर बहुत महँगा है और भारत से पाँच गुना है। यहाँ की बसें भी इसी दृष्टिकोण को सामने रखते हुए बनाई गई हैं। यानी इन बसों में सिर्फ एक आदमी ही होता है। वही ड्राइवर, वही कन्डक्टर और वही टिकिट देने का काम करता है। बस में चढ़ने का दरवाजा ड्राइवर के पास होता है और उतरने का ठीक बस के बीच में जो तब ही खुलता है जब ड्राइवर अपनी सीट पर बैठा बटन दबा देता है। यह काम सैकिन्डों में होता है और यात्री लोग भी सहयोग देने वाले होते हैं। बिना टिकिट तो यहाँ कोई सफ़र नहीं करता। तुम्हें यह जानकर आश्चर्य होगा कि यहाँ की बसें और कारें क़रीब ४५ मील फ़ी घण्टा भागती हैं। तभी तो यहाँ हर सप्ताह क़रीब ५७६ मृत्युएँ मोटर दुर्घटनाओं से होती हैं। यहाँ की बसें बड़ी आरामदेह और वायुअनुकूलित होती हैं।

बस चलते ही ड्राइवर ने माईक्रोफोन से यात्रियों को यात्रा के जनरल प्लान से परिचय करा दिया। रास्ते में जो-जो जगह अच्छी-अच्छी आती थीं, वह उनके बारे में बताता जाता था। किन्तु जो जगह ख़ास-ख़ास थी वहाँ हम लोग बस से उतर पड़ते थे और ड्राइवर हमें इन जगहों के बारे में बता देता था। हम लोग सानफ्रांसिसको के

अजायबघर, चिड़ियाघर और कई ऐतिहासिक स्थानों पर गये। जब हमारी बस एक पहाड़ी पर आई तो वहाँ से सानफ्रांसिसको शहर दिखलाई दे रहा था। समुद्र और संसार के बड़े पुलों में से एक गोल्डन ब्रिज भी बड़ा भला मालूम होता था। ऐतिहासिक स्थानों के अलावा हम लोग यहाँ के एक बड़े बाग़ में गये, जहाँ सैकड़ों तरह के बड़े अच्छे फूल थे। सानफ्रांसिसको की जलवायु बहुत अच्छी मानी जाती है। यहाँ तो बर्फ कभी कभी पड़ती है वरन् मौसम सदा एकसा रहता है जैसे देहली में दिसम्बर माह में होता है। पाँच घंटे तक हम लोग सैर करते रहे। इसके बाद हमारी बस वहीं आकर खड़ी हो गई जहाँ से ६-३० बजे चली थी।

इस समय क़रीब तीन बजे होंगे। हमें ज़रा भूख महसूस हुई। फ़ैसला किया कि कुछ खाया जाय। पास ही एक जगह खाने की थी। एक सैण्डविच खाई। शायद तुम पूछो कि सैण्डविच क्या होती है। यहाँ सैण्डविच बड़ी आम सी खुश्क होती है। यह कई प्रकार की होती है। माँस की भी, पनीर की भी और टमाटर की भी होती है। मैंने तो टमाटर की ही खाई। इसको बनाना बड़ा आसान है। डबल रोटी के दो टुकड़ों के बीच टमाटर और सलाद के पत्ते रखकर बन जाती है। मक्खन भी लगा दिया जाता है। शायद आपको याद हो एक या दो बार मैंने आपके सामने देहली में बनाकर खाई थी। यहाँ लंच में अधिक तर सैण्डविच ही खाते हैं। कुछ खा पीकर हम लोग अपने होटल की तरफ चल पड़े।

कमरे में आकर मैं जरा लेट गया और कुछ देर के लिए मेरी आँख भी लग गई। जब मैं उठा तब पाँच बज चुके थे। मुँह धोकर मैं तैयार हो गया और अपने और साथियों के साथ बर्कले में होने वाली स्वागत सभा में चलने के लिए होटल के स्वागतकक्ष में आया। हम लोग बाहर

जाने वाले ही थे कि पता लगा कि श्रीमुहम्मद अली जिन्ना की मृत्यु हो गई। सुनकर दुःख हुआ। इससे भी अधिक दुःख तब हुआ जबकि होटल वालों ने कहा कि श्री जिन्ना की मृत्यु के उपलक्ष में एक अच्छी दावत होगी। इसलिए मीटिङ्ग के बाद हम लोग यहीं आकर खाना खायें। यह ख़याल मुझे बिलकुल भी पसन्द नहीं आया। परन्तु खाना तो खाना ही था। चाहे इस होटल में चाहे किसी बाहर के होटल में। हम लोग बर्कले की ओर चल पड़े और वहाँ सात बजे से पहले ही पहुँच गये। वहाँ सबसे पहले श्री जिन्ना की मृत्यु पर शोक प्रकट किया गया। जिस पर कि कुछ उन विद्यार्थियों ने आपत्ति उठाई जो भारत के विभाजन से नुकसान उठा चुके थे। बहस ने बड़ी गम्भीर सूरत इख़्तियार कर ली। परन्तु एक वृद्ध अमरीकी प्रोफेसर ने बीच-बचाव कर दिया। थोड़ी देर में सभा समाप्त हुई, हम लोग कुछ और देशों के विद्यार्थियों से मिल-जुलकर अपने-अपने होटलों की तरफ़ चल पड़े।

गोल्डफील्ड होटल आने पर हमें गुजराती ढंग का खाना मिला। साथ-साथ एक-एक परौंठा मिला। खाना बड़ा स्वादिष्ट था। परन्तु जिस उपलक्ष में बनाया गया था वह मुझे पसन्द नहीं था। एक बार तो मन में आया कि खाना यहाँ न खाया जाय। परन्तु रात इतनी हो चुकी थी कि शक था कि कहीं और खाना मिले या नहीं मिले। इसके अलावा मुझे इस नई जगह की जानकारी भी नहीं थी। बेबस होकर वहीं खाना खाना पड़ा।

खाना खाकर हम लोग होटल के ड्राइंग रूम में आये और श्री जिन्ना और भारत की राजनीति पर वार्त्तालाप होने लगा। भारत के बटवारे के ख़िलाफ़ बहुत कुछ कह गया। वहाँ कुछ बूढ़े क्रांतिकारी भी बैठे हुए थे। उन्होंने भी अपनी-अपनी कहानियाँ सुनाईं और पाकिस्तान बनवाने का आरोप गान्धीजी और कई नेताओं पर लगाया गया। आपको हमारे

स्वातन्त्र्य संग्राम का इतिहास मालूम है ही। आपको याद होगा कि ये क्रांतिकारी यहाँ बंगाल विभाजन १६०८ में और १६१२ के बाद भारत से निकल भागे थे। यहाँ इन्होंने एक गदर पार्टी बनाई थी और अमेरिका ही से बैठकर भारत का राष्ट्रीय आन्दोलन चलाते थे। मैं इनके दृष्टिकोण से अलग विचार रखता हूँ। क्योंकि मेरा यह विश्वास रहा है और रहेगा कि अहिंसा ही एक ऐसा साधन है जिससे किसी भी दुश्मन पर काबू पाया जा सकता है। हमारा वार्त्तालाप रात के क़रीब एक बजे तक चलता रहा, फिर हम लोग अपने-अपने कमरों में आकर सो गये।

सबेरे जब मैं सोकर उठा तो आठ बज चुके थे। मेरा साथी अभी तक सो ही रहा था। वह भी क़रीब-क़रीब ८-३० बजे तक उठ गये होंगे। ६-३० बजे तक मैं तैयार हो गया और नाश्ता करके कुछ पत्र लिखने लगा। पत्र लिखकर मैंने अपने साथी से बैठकर सारे दिन का प्रोग्राम बनाया। यह भी निश्चय किया गया कि हमें कब और कौनसी रेल से ऑन आर्बर की तरफ़ जाना है। हम यह बातचीत कर ही रहे थे कि भारतीय दूतावास के सचिव से टेलीफोन आया कि भारत सरकार ने भारतीय विद्यार्थियों के लिए कल शाम के लिए एक गाड़ी सुरक्षित करा दी है और उस गाड़ी में ही एस. एस. जेनरल मीग्गस जहाज में आये विद्यार्थी अपनी-अपनी यूनीवर्सिटी को जायेंगे। उसने यह भी कहा कि जो लोग भारत सरकार की छात्र-वृत्ति पर नहीं हैं वह अपने-अपने टिकट ख़रीद लें।

हम लोग जो गोल्डफील्ड होटल में ठहरे हुए थे सभी ऐसे थे जो भारत सरकार के विद्यार्थी नहीं थे। इसलिए हमने सलाह की कि क्यों न अब यही शुभ कार्य किया जाय। मैं तीन और साथियों के साथ रेलवे स्टेशन की तरफ़ चल पड़ा और क़रीब २० मिनट में वहाँ जा पहुँचा।

सैनफ्रांसिसको से ऑन आर्बर का क़िराया क़रीब ५० डालर देना पड़ा। यानी २५०) रु०। यही क़िराया कोच क्लास का था। यह मैं पहले ही लिख चुका हूँ कि यहाँ रेल में दो क्लासें होती हैं—एक कोच और दूसरी पुलमैन। टिकट खरीदकर हम लोगों ने बाज़ार की सैर की और फिर अपने होटल वापस आ गये।

अगले दिन तो हमें होटल छोड़कर ऑन आर्बर जाना ही था, इसलिए कुछ और पत्र लिखे। सामान बाँधा और सैर को चल पड़े। दोपहर बाद वापस आये, ज़रा देर बैठे। लोगों से उनके पते लिये और फिर शाम को रेलवे स्टेशन पर आ गये गाड़ी में बैठने के लिए।

अमेरिकन रेलें भारतीय रेलों से कई तरह से भिन्न हैं। यहाँ की रेलें एयरकंडीशन्ड होती हैं और डिब्बे लम्बे-लम्बे होते हैं, जो प्रायः एक दूसरे से जुड़े होते हैं। जिससे एक डिब्बे से दूसरे में आसानी से जाया जा सकता है। कोच क्लास तो पुलमैन से कम क़िराये की होती है। इसकी सीटें बड़ी आरामदेह होती हैं और उन पर आसानी से सोया भी जा सकता है। यह सीटें हमारी रेलों जैसी नहीं होतीं बल्कि जैसे हमारे यहाँ आराम कुर्सी होती है ऐसी होती हैं। इन आराम कुर्सियों को सोते समय फैलाया भी जा सकता है। पुलमैन क्लास में लोअर और अपर बर्थ होती हैं। यह क्लास बड़ी महँगी होती है और इसकी सीटें हमारे प्रथम श्रेणी के दर्जे जैसी होती हैं। परन्तु यहाँ की पुलमैन क्लास संसार की सभी रेलों से अच्छी मानी जाती हैं। मैंने कोच और पुलमैन दोनों में मुसाफ़िरी की है। अपने पैसों से तो नहीं, परन्तु जब मैं राकफेलर फाउन्डेशन का फैलो यानी उनकी छात्रवृत्ति पर था तब मैंने एक बार इस दर्जे से यात्रा की थी। मैंने इसे बहुत पसन्द किया। प्रायः इन रेलों की रफ़्तार फ़ी घण्टा ८० से ८५ मील होती है। पहले-पहले तो मुझे यक़ीन नहीं आया कि रेलें इतनी तेज़ चल सकती हैं परन्तु जब मैंने रेल

में बैठकर बाहर बिजली के खम्बे खुद गिने तो मुझे कुछ-कुछ यक़ीन हुआ। कुछ रेलों में आबजर्वेटरी भी होती हैं यानी रेल के ऊपर एक दो-मंज़िला कम्पार्टमैण्ट होता है, जिसमें बैठकर बाहर की सीनरी देख सकते हैं। यह कम्पार्टमैण्ट भी वायु-अनुकूलित होता है और इसकी छत मोनेसेलीलाईट की होती है। इस आबजर्वेटरी में बैठकर मैंने कोलोरेडो के सुन्दर पहाड़ देखे थे। सानफ्रान्सिसको से ऑन आर्बर आने में हमें तीन दिन लगे। खाने के लिए तो डाइनिंग कार भी थी परन्तु मैंने तो अपने साथ काफ़ी फल रख लिये थे। कुछ रास्ते में से भी लेता रहा था। रेल में भी डाइनिंग कार के अलावा सैन्डविचैज, दूध, काफ़ी और खाने की चीज़ें सीटों पर ही मिल जाती थीं; क्योंकि रेल की तरफ़ से ही बेचने का यह सब इन्तज़ाम होता था। यह देखने के लिए कि यहाँ का डाइनिंग रूम कैसा होता है मै एक बार नाश्ता लेने गया था।

हमारी रेल पहाड़ों और गुफ़ाओं से गुज़र कर जब आ रही थी तो बड़ी भली मालूम दे रही थी। कोई-कोई गुफ़ा तो एक मील से अधिक लम्बी होती थी। कोलोरेडो राज्य के पहाड़ तो बहुत ही खूबसूरत मालूम देते थे। मैंने वहाँ की कुछ तस्वीरें भी खरीदी थीं, जो मैं अपने साथ लाया था। यह सब तस्वीरें देहली में हैं। भारत लौटने पर दिखाऊँगा। साल्ट लेक शहर के बाद शिकागो की तरफ़ जब हमारी रेल आई तो बड़ा हरा-भरा इलाक़ा आने लगा। मकई के खेत मीलों तक नज़र आते थे। जिधर भी नज़र दौड़ाओ हरा-हरा ही नज़र आता था। मैं इस पहली और जीवन की सबसे लम्बी रेल यात्रा को कभी न भुला सकूँगा।

रास्ते में बड़ा मज़ा रहा। जिस कम्पार्टमैण्ट में मैं बैठा था वह भारतीय विद्यार्थियों के लिए ही सुरक्षित था। परन्तु ज्यों-ज्यों हमारी रेल ऑन आर्बर के नज़दीक आती जाती थी साथियों की तादाद कम

होती जाती थी। क्योंकि लोग आहिस्ता-आहिस्ता उतरते जाते थे। हम आठ विद्यार्थियों को ऑन आर्बर जाना था। इसलिए इन आठ विद्यार्थियों का साथ तो आखिर तक रहा। शिकागो आकर हमने ऑन आर्बर जाने के लिए दूसरी गाड़ी बदली और शाम को ६ बजे ऑन आर्बर स्टेशन आ गये। वहाँ से टैक्सी लेकर अंतर्राष्ट्रीय विद्यार्थियों के मिलने-जुलने और ठहरने का केन्द्र आये।

: ८ :

ऑन आर्बर में पहले दस मास

बहुत दिन के बाद आज मैं फिर तुम्हें यह कहानी सुनाने बैठा हूँ। यह तो आप पहिले ही जानती हैं कि पिछले दो मास में अपने अध्ययन में मैं कितना मशगूल रहा हूँ। क़रीब दो वर्ष रात-दिन के घोर परिश्रम करने के बाद मैं अपनी थीसिस समाप्त कर सका और इस की परीक्षा में पास हो सका। आजकल भी उतना ही परिश्रम कर रहा हूँ। सारे दिन प्रैक्टीकल ट्रेनिंग करता हूँ। रात को १० बजे तक और शनिवार और इतवार को मैं अपनी पं० नेहरू पर पुस्तक के लिए सामग्री जमा कर रहा हूँ। सोचता हूँ कि भारत आने पर अपनी थीसिस जो गान्धीजी पर है और इस पुस्तक जो पं० नेहरू पर है प्रकाशित करवा दूँ। देखिए भगवान् को क्या मंजूर है। यह तो मैं अपने पहले पत्रों में लिख ही चुका हूँ कि जीवन में सच्ची सफलता प्राप्त करने के लिए मनुष्य को वर्षों घोर परिश्रम और त्याग करना पड़ता है। मैं तो अपने जीवन में ऐसा सफल इन्सान बनना चाहता हूँ जिससे संसार के और प्राणियों के लिए भी कुछ कर सकूँ। अपना-अपना पेट तो सभी भर लेते हैं। आप मेरा दूसरा हाथ हो प्रेम ? मेरी सफलता तुम्हारी सफलता है और तुम्हारी सफलता मेरी।

पहले पत्र में मैंने तुम्हें अपने ऑन आर्बर आने तक का हाल लिखा था और यह भी लिखा था कि जब हमारा दल ऑन आर्बर आया तो रहने की जगह का इन्तज़ाम नहीं हुआ था। ऑन आर्बर में सब कमरे भर गये थे। क्योंकि उस वर्ष विद्यार्थी पहले से अधिक आये थे। इसका सबसे बड़ा कारण यह कहा जा सकता है कि क्लार वैटरकस जिनको जी० आई०

बिल के मातहत यू० एस० गवर्नमैंट पढ़ने और पुस्तकों का खर्च देती थी, उन सभी ने फिर से विश्वविद्यालयों में प्रवेश ले लिया था। विदेशी छात्र भी काफ़ी तादाद में थे।

जब हमें रहने के लिए कोई जगह नहीं मिली तो इन्टरनेशनल सेन्टर में ही अस्थायी बिस्तरे लगा दिये गये थे और हम लोग वहाँ तीन चार दिन तक सोये। शायद पाँचवें दिन हमें कहा गया कि विलोरन गाँव जो कि ऑन आर्बर से क़रीब २० मील दूर है वहाँ युद्धकालीन निवास स्थान में जगह मिली है। यह रहने की जगहें लड़ाई के दिनों में हवाई जहाज़ के कारखाने में काम करने वाले कारीगरों के लिए बनाई गई थीं। यह (डॉरमेटरीज़) लड़ाई की बनी हुई थीं और साफ सुथरी थीं।

यहाँ कई डॉरमेटरीज़ थीं और इनमें क़रीब २००० विद्यार्थी रहते थे। हम को विश्वविद्यालय तक ले जाने और लाने के लिए विश्व-विद्यालय की बसें थीं जो हर तीस मिनट के बाद आती जाती थीं।

अमेरिकन विश्वविद्यालयों में कक्षायें सबेरे आठ बजे से शुरू होती हैं और शाम तक चलती रहती हैं। इसका अर्थ यह नहीं कि विद्यार्थी सारे दिन कक्षाओं में ही रहते हैं बल्कि जिस विद्यार्थी ने जिस कक्षा में प्रवेश लिया है वह उस में ठीक समय पर चला जाता है। इस का बड़ा लाभ यह है कि यहाँ विद्यार्थी कमाते भी रहते हैं और पढ़ते भी रहते हैं। भारत में ऐसा नहीं है। मैंने अपनी पहली कक्षा सवेरे आठ बजे की ली। कक्षा में ठीक आठ बजे आने के लिए मुझे ७ बजे ही बस लेनी पड़ती थी। ७-३० बजे बस स्टेशन जो हमारी जनरल लाइब्रेरी के पास था आ जाता था। बस स्टेशन के पास एक नाश्ता करने की दूकान थी, वहाँ ही गर्म काफी और थोड़ा कुछ खाकर कक्षा में समय से पाँच मिन्ट पहले ही पहुँच जाता था क्योंकि अमेरिकन

विश्वविद्यालयों की पढ़ाई भारतीय विश्वविद्यालयों से भिन्न है इस-लिए पहले-पहले तो अजीब ही नहीं मुश्किल भी लगा। बहुत सी बातें समझ में नहीं आती थीं। यहाँ पर हर सप्ताह इम्तहान होता है। पढ़ाई शुरू होने के बाद मेरा भी इम्तहान हुआ तो उसमें मैं ठीक उत्तर नहीं लिख सका। मैं अपने प्रोफेसर के पास गया और कारण बतलाया कि प्रश्न मेरी समझ में ठीक-ठीक नहीं आये थे। प्रोफेसर ने मुझे बड़ी नम्रता से अगले सप्ताह में सवाल ध्यान से पढ़ने के लिए कहा और यह भी बतलाया कि जो पुस्तकें पढ़ने को कहें उन्हें ध्यान से पढ़ूँ। मैंने ऐसा ही किया और फिर सभी इम्तहानों में मैं अच्छे नम्बर लाने लगा।

यहाँ के सभी पुस्तकालय सबेरे आठ बजे से रात के दस बजे तक खुलते हैं विद्यार्थी प्रायः पुस्तकालयों में ही पढ़ते हैं। भारत में ऐसा रिवाज़ अभी नहीं है। विश्वविद्यालय के हर स्कूल और विभाग की अपनी अलग-अलग लायब्रेरी हैं। हमारे विभाग की तो लायब्रेरी ही अलग नहीं बल्कि हर विद्यार्थी की अलग मेज है जो उसे हर Samster के लिए एलौट हो जाती है। इससे पढ़ाई में बड़ी आसानी हो जाती है। मै तो सवेरे आठ बजे आकर रात को १०-३० की बस से वापस जाया करता था। क़रीब एक घण्टा पढ़कर १२ बजे के बाद सो जाता था ताकि सबेरे ६ बजे आसानी से उठा जा सके।

जिस डॉरमेटरी में मैं रहता था उस में क़रीब १०० विद्यार्थी रहते थे। इनमें से ८ भारतीय थे। शेष या तो अमेरिकन या विदेशी थे। मेरा कमरा दो सीटों का था और मुझे हर मास २८ डालर क़िराया देना पड़ता था। मेरे रूम मेट बम्बई के एक राष्ट्रीय मुस्लिम थे। उनका नाम शोभी हेदरी था और बहुत ही नेक तबियत के इन्सान थे। मेरे कमरे के पास ही एक सीट वाले कमरे में पंजाब से आये डेन्टिस्ट डाक्टर थे। मेरे सामने के कमरे में एक बिहार से आये प्रोफेसर और

एक मथुरा निवासी भाई रहते थे । यह दोनों मनोविज्ञान के विद्यार्थी हैं। हमारे १९४८ के दल के क़रीब सभी विद्यार्थी चले गये हैं। उनमें से बहुत से पी० एच० डी० कर चुके हैं।

इस डॉरमेटरी में बम्बई के एक बड़े व्यापारी के सपुत्र भी रहते थे। कभी-कभी हम लोग साथ बैठकर बातचीत भी करते थे और गाने भी गाते थे।

इन दिनों जीवन बड़ा कड़ा था। इतना कड़ा परिश्रम करना पड़ता था कि मालूम नहीं होता था कि सूरज किधर से निकलता और किधर छिप गया। सर्दी भी पड़ने लगी थी और बर्फ भी खूब पड़ने लगी थी। जीवन में यह मेरा पहला मौक़ा था कि बर्फ पड़ते देखी। बड़ा सुन्दर दृश्य था । क्रिसमस की छुट्टियों में डॉरमेटरीज के पास जो केफेटेरिया था वह भी बन्द हो गया था। शहर दूर था। बस सर्विस भी कम हो गई थी। बिहार के भाई ने एक उपाय निकाला कि एक इलैक्ट्रिक हीटर ख़रीदा जाय और कमरे में ही सब्ज़ी इत्यादि बनाई जाय। उनका यह सुझाव बड़ा नेक था और हम सभी ने मान लिया। बड़े दिन की छुट्टियों में आलू, मटर, आलू-गोभी इत्यादि की सब्ज़ी बना लेते थे और डबल रोटी के साथ खाकर दूध पी लेते थे। इस तरह बड़े दिन की छुट्टियाँ कट गई। केफेटेरिया खुलने के बाद तो हम लोग वहाँ ही खाना खाने लगे।

शायद आप पूछना चाहो इस केफेटेरिया शब्द का क्या अर्थ है। केफेटेरिया सिस्टम आजकल भारत में चल पड़ा है। इसका सबसे अच्छा उदाहरण अन्नपूर्णा है जो देहली, बम्बई, कलकत्ता इत्यादि में अब खुल गये हैं। यह न रैस्टोरेन्ट कहा जा सकता है और न होटल बल्कि यह वह खाने की जगह है जहाँ लोग एक लाईन में खड़े होकर खिड़की पर से खाने की चीज़ें खुद उठा लें जिन्हें वे खाना चाहें। फिर उन चीज़ों के

दाम काउन्टर पर बैठे हुए खजाँची को दे दें और अपनी तश्तरियाँ खुद उठा कर केफेटेरिया में पड़ी मेज़ और कुर्सी पर बैठ जायं। खाना खाकर किसी-किसी केफेटेरिया में तश्तरियाँ खुद उठाकर एक बड़ी मेज़ पर रख देते हैं और किन्हीं केफेटेरिया में वहीं पर छोड़ देते हैं जहाँ खाना खाया है। मिशीगन यूनियन में हमें अपनी तश्तरियाँ खुद उठाकर एक कोने में रखी बड़ी मेज पर रखनी पड़ती हैं।

एक दिन जब में मिशीगन यूनियन में खाना खा रहा था तो मेरा एक अमेरिकी विद्यार्थी से खुद बखुद परिचय हुआ। बातों-बातों में मैं उससे पूछ बैठा कि आप अपने जीवन में क्या बनना चाहते हैं। उसने कहा कि एक अच्छा कवि और लेखक। मुझे उसके विचार पसन्द आये क्योंकि अमेरिका के भौतिकवादी समाज में हज़ारों में एक दो ही अपने जीवन का यह उद्देश्य बनाना चाहेंगे। हम लोग काफ़ी परिचित हो गये और वे अपनी कवितायें सुनाने लगे। इधर मुझ से भी न रहा गया। मैं भी एक दिन कह बैठा कि मुझे भी कविता से बड़ा शौक़ है और कभी-कभी लिखता भी हूँ। मेरा कहना था कि उसने मुझ से मेरी कवितायें सुनाने को कहा और मुझे सुनानी पड़ीं।

मेरा इस अमेरिकी कवि से परिचय दिसम्बर से क़रीब दो मास पहले हो चुका होगा। क्रिसमस पर उसने मुझे एक अमरीकी कवि की कविताओं का संग्रह भेंट किया। कवि का नाम वाल्टर ह्विटमैन (१८१९-१८९२) और इस पुस्तक का नाम है दूब की पत्तियाँ (Leves of Grass) (१८५५)। इस कवि ने एक पुस्तक लिखी थी भारत के लिए पथ (Passage to India) (१८७१)। मुझे यह कवि बहुत पसन्द आया है। कहा जाता है कि अमेरिकियों ने इसे इतना पसन्द नहीं किया। इस कवि मित्र ने यह पुस्तक ही भेंट नहीं की बल्कि क्रिसमस की दावत के लिए अपने घर चलने का निमन्त्रण भी दिया। इनका

घर ऑन आर्बर के पास एक शहर जैकशन में है। उनके पिताजी हम दोनों को लेने आये और रात को मुझे खाने के बाद मेरे निवास-स्थान पर छोड़ गये। उन्होंने मेरे साथ क्रिसमसवृक्ष के पास चित्र भी लिये, जो मेरे पास हैं, तुम्हें दिखाऊंगा। इस मित्र पर भारतीय सभ्यता का इतना असर हुआ है कि इसने रामकृष्ण मिशन में वेदान्त पढ़ना शुरू कर दिया है और शायद अब भारत चला गया है। वहाँ वह कलकत्ता विश्वविद्यालय में पढ़ाएगा और वेदान्त भी पढ़ेगा। यह सूचना उसने मुझे एक पत्र में दी थी जो करीब पाँच मास पहले उसने मुझे भेजा था।

जब मै दोबारा १९५० में ऑन आर्बर एक सम्मेलन में शामिल होने न्यूयार्क से आया तो मैंने इस मित्र को एक विशेष डाक से पत्र भेजा। उसने इसका तुरन्त उत्तर दिया। मुझे सम्मेलन में शामिल हो-कर चार दिन के बाद न्यूयार्क जाना था। यह मित्र मुझसे मिलने रेलवे स्टेशन पर आया और मुझे सुन्दर फूल भेंट किये।

जब मैं १९४८ में भारत से अमेरिका गया था तो बड़ा दुबला-पतला लड़का था परन्तु यहाँ आने पर दिसम्बर के अन्त में मैंने महसूस किया कि मेरे कपड़े छोटे होने लगे हैं। नये सूट खरीदने के लिए डालर तो थे नहीं। मैंने अपने उन्हीं दो सूटों को बड़ा करवाने का फैसला किया जो भारत से लाया था। इनको बड़ा कराने के लिए मुझे दर्जी को १२ डालर देने पड़े थे यानी करीब ६० रुपया। यहाँ का रहन-सहन का दरजा हमारे रहन-सहन के दर्जे से चार गुना अधिक है।

इन्हीं दिनों में मुझे दो गिरजाघरों में जाने का भी निमन्त्रण मिला और बहुत से ईसाई मित्रों से बातचीत करने का अवसर मिला।

धन्यवाद देने का उत्सव (Thanks giving Day) जो यहाँ का बड़ा त्यौहार है मुझे एक अमेरिकन किसान की ओर से निमन्त्रण आया।

वह किसान मुझे अपनी कार में मेरे घर लेने आया और अपने खेत पर ले गया, जो आॅन आर्बर से करीब १२ मील दूर होगा । अमेरिकी किसान भारतीय किसान से भिन्न होते हैं । अमेरिकी किसान के पास कम से कम दो कारें, एक या दो ट्रकें, ट्रैक्टरें और ऐसी कई बड़ी-बड़ी चीजें होती हैं । इसका घर भी ऐसा होता है जैसे किसी भी शहर के रहने वाले शहरी का होता है। इसके घर में टेलीफोन, टेलीविजन, अख़बार, आराम कुर्सियाँ, कालीन और एक छोटी लाइब्रेरी होती है । यह अपने खाने की तरकारियाँ प्रायः खुद ही उगाते हैं । मुर्गियाँ भी पालते हैं और अपने आराम के लिए खुद काम करते हैं । किसी-किसी किसान के पास तो अपना हवाई जहाज़ भी होता है । यह मेरा पहला मौका था कि मैंने अमेरिकन किसान को देखा था । परन्तु यहाँ गरीबी भी है । इसका हाल मैं फिर लिखूँगा ।

जनवरी १९४९ के अन्त में मेरे इम्तहान हुए और ईश्वर की कृपा से सभी विषयों में मै पास हो गया था । मेरे नम्बर भी बड़े अच्छे थे । फरवरी के मध्य से वसन्तकालीन पढ़ाई शुरू हो गई और वह जून के पहले सप्ताह में समाप्त हो गई क्योंकि मेरे पास पहले ही तीन स्नातक उपाधियाँ थीं इसलिए मैंने जून में ही ए० एम० एल० एस० कर लिया था । शायद १५ जून को दीक्षान्त समारोह था । मैं उसमें पूरी एकेडे-मिक पोशाक को पहन कर शामिल हुआ था और अपनी ए० एम० एल० एस० उपाधि ली थी । मेरे एक बंगाली मित्र ने जो बड़े अच्छे फोटो लेते थे इस अवसर के चित्र भी लिये थे जो मेरे पास देहली में हैं वापस आने पर आपको दिखाऊंगा ।

मार्च के पहले सप्ताह में जब मैं अपने दो अमेरिकन मित्रों के साथ मिचीगन यूनियन में बैठा कॉफी पी रहा था तो उनमें से एक ने पूछा कि मैं जून के बाद क्या करूंगा । मैंने कहा कि भारत वापिस चला

जाऊंगा। उसने दोबारा पूछा कि क्या मैं प्रैक्टीकल ट्रेनिंग नहीं लूँगा। मैंने कहा "कहाँ ?" उसने कहा लाइब्रेरी आफ कांग्रेस, वाशिंगटन, डी० सी० मैं सोचने लगा कि मुझे प्रैक्टीकल ट्रेनिंग देने का मौका कौन देता है और यह सोचकर चुप हो गया। दूसरे दिन जब हम फिर उसी समय कॉफी पी रहे थे तो उसी मित्र ने पूछा कि क्या मैंने प्रार्थना-पत्र लिखकर लाइब्रेरी आफ कांग्रेस को भेज दिया है। मैंने कहा नहीं। तो उसने कहा कि प्रार्थना-पत्र भेजने में तो कोई हानि नहीं है। कम से कम प्रार्थना-पत्र तो भेज ही दो।

उसी सप्ताह के दौरान में हमारे पुस्तकालयशास्त्र के विभाग के प्रधान के पास यूनाइटेड नेशन्स लेकसक्सैस से एक पत्र आया कि आपके स्कूल में जो विद्यार्थी पुस्तकालय विज्ञान पढ़ रहे हैं अगर वह यूनाइटेड नेशन्स की लाइब्रेरी में काम करना पसन्द करें तो शीघ्र से शीघ्र प्रार्थना-पत्र भरकर भेज दें। इस पत्र में मेरा भी नाम था। मुझे चेयरमैन ने बुलाया और पूछा कि क्या मैं यू. एन. पुस्तकालय में काम करना पसन्द करूंगा। मैंने कहा बड़ी खुशी से। मैंने प्रार्थना-पत्र भर दिया और अध्यक्ष को अपने संलग्नपत्र के साथ भेज दिया।

दो सप्ताह बाद लाइब्रेरी ऑफ काँग्रेस और यूनाइटेड नेशन्स के पुस्तकालय से पत्र आया और मेरी खुशी का ठिकाना न रहा कि दोनों जगह ही मुझे काम सीखने का मौका मिल गया। मैंने अपने प्रोफेसर से सलाह ली कि कहाँ जाना मेरे लिए उत्तम रहेगा। उन्होंने मुझे लाइब्रेरी ऑफ काँग्रेस जाने को कहा। मैंने निश्चय कर लिया था कि पहले लाइब्रेरी ऑफ कांग्रेस जाऊंगा और दो मास के बाद यूनाइटेड नेशन्स लायब्रेरी। मैंने यूनाइटेड नेशन्स लाइब्रेरी को भी लिख दिया। मुझे लायब्रेरी ऑफ कांग्रेस में १ जौलाई को काम शुरू करना था। १५ जून को दीक्षान्त समारोह में उपाधि लेकर १७जून को शाम के पांच बजे

की गाड़ी से मैं वाशिङ्गटन डी. सी. की ओर जो अमेरिका की राजधानी है चल पड़ा और वहां १८ जून को सबेरे पहुँच गया।

यहां मैं यह लिख देना ठीक समझता हूँ कि अमेरिकन समाज के बारे में मेरे विचार जो जून १६४६ तक थे वह १६५० में नहीं थे। और आज भी नहीं है। इसके बारे में मैं अपने आखिरी अध्याय में पूर्ण विवरण से लिखूंगा। परन्तु इस समय संक्षेप में ही लिखता हूँ।

जब मैं शुरू-शुरू में अमेरिका आया तो मुझे सभी लोग देवता नजर आते थे। उन दिनों मैंने जितने पत्र लिखे उन सभी में मैंने ऐसे विचार प्रकट किये कि अमेरिका के लोगों जैसे सच्चे, सीधे और बड़े दोस्ताना संबंध के लोग कहीं नहीं हैं। मैंने यहां समाज की स्वर्गलोक से तुलना की परन्तु ज्यों-ज्यों मैने इस समाज को पास से देखा, इन लोगों से मिला जुला इनसे बातें की तो आश्चर्य की सीमा न रही और मन में सोचने लगा कि इन लोगों में कोई खास खूबी नहीं है, यह भी संसार के अन्य लोगों जैसे ही हैं, इनमें बुरे भी हैं और अच्छे भी, संसार के सभी प्राणियों की तरह।

सबसे बड़ा अंतर जो मैं अपने लोगों में और इनमें देखता हूँ वह यह है कि ये लोग हद दर्जे के भौतिकवादी हैं और हम लोग अधिकतर अध्यात्मवाद में विश्वास रखते हैं। यहां के मां बाप अपने बच्चों से ऐसा व्यवहार नहीं करते जैसा हम करते हैं। इनके सम्बन्ध अधिकतर भौतिकवादी हैं। जिस घर में मैं रहता हूँ उसकी स्वामिनी अपने लड़के से मकान किराया जैसे मुझसे लेती है वैसे ही अपने पुत्र से, खाना अलग पकाती है इत्यादि। ऐसी बहुत सी मिसालें हैं। बेटे बेटियां सभी अपने मां बाप से ऐसा व्यवहार करते हैं। रिश्तेदारों की बात तो बिलकुल दूसरी है। वह तो ऐसे हैं जैसे कोई भी गैर हो सकता है। परन्तु हमारे यहाँ ऐसी बातें नहीं है। यहाँ और भी कई ऐसी बातें हैं जो हमारे

समाज से भिन्न हैं। मैं तो कहूँगा कि हमारी सभ्यता उनकी सभ्यता से लाखों दर्जे अच्छी है। हाँ, यह कहना पड़ेगा कि अमेरिका ने टैक्नी-कल प्रगति हम लोगों से अधिक की है परन्तु आध्यात्मिक प्रगति इन लोगों की नहीं के बराबर है।

हम भारतीय विद्यार्थी कुछ यहाँ के भौतिकवादी वातावरण के शिकार हो जाते हैं। परन्तु एक सच्चा और पक्का भारतीय यहाँ से सिर्फ वही चीज़ें सीखने की कोशिश करता है जो उसके लिए ठीक हैं। यही कारण है कि कुछ विद्यार्थी यहाँ अपना समय बरबाद करते रहते हैं। न वह पढ़ते हैं और न लिखते हैं। सालों हो जाते हैं कि परीक्षा में पास नहीं होते। बस खाने पीने के लिए मजदूरी कर लेते हैं। परन्तु हमें तो ऐसे रहना चाहिए जैसे पानी में कमल रहता है। पानी में रह कर भी पानी से ऊपर। हमें जो यहाँ से सीखना है उसे शीघ्र-से-शीघ्र सीख कर अपने देश को लौटना है ताकि हम भी अपने देश को संसार का एक विशाल देश बनाने में सहायक हो सकें। मेरे शब्दों में तो अमेरिका वालों को हमसे अभी बहुत कुछ सीखना है और हमें उनसे टैक्नीकल क्षेत्र में कुछ सीखना है; यह मैं मानता हूँ। अगले पत्र में मैं मिचीगन विश्वविद्यालय और मिचीगन राज्य के बारे में लिखूँगा। इस अध्याय को भी सम्भाल कर रखना।

: ६ :

मिचीगन विश्वविद्यालय और मिचीगन राज्य की एक झलक

मिचीगन विश्वविद्यालय की नींव १८१७ में डिट्राइट शहर में जो कि आॅन आर्बर से क़रीब ३५ मील पर है, रखी गई थी। शुरू-शुरू में इसका नाम यूनिवर्सिटी आॅफ मिचीगन था। जब मिचीगन स्टेट यूनाइ-टेड स्टेट्स यूनियन का एक सदस्य बन गई तो २० मार्च १८३७ के एक एक्ट से मिचीगन विश्वविद्यालय की स्थापना आॅन आर्बर में हुई। विश्वविद्यालय की इमारतें बननी शुरू हुईं और कुछ दिन बाद पढ़ाई भी शुरू हो गई। इसकी पहली क्लास में सात विद्यार्थी थे और प्रोफे-सरों की तादाद तीन थी। परन्तु प्रगति करते-करते आज इसके विद्या-र्थियों की संख्या क़रीब २३००० है, जिनमें से लगभग ११०० विद्या-र्थी संसार के प्रायः सभी देशों से उच्च शिक्षा प्राप्त करने आये हुए हैं। भारतीय विद्यार्थियों की संख्या करीब ६५ है।

इस विश्वविद्यालय में १८ बड़े-बड़े स्कूल शामिल हैं और इन विद्यालयों में ३५ विभाग हैं जिनमें उतने ही विषय पढ़ाये जाते हैं। विश्वविद्यालय कई मीलों में फैला हुआ है। इसकी बड़ी-बड़ी इमारतों की तादाद करीब ४५ है।

यहाँ की जनरल लायब्रेरी देश में आठवीं बड़ी लायब्रेरी समझी जाती है। इसमें ८५६,८१० पुस्तकें हैं। नक्शों की संख्या ६२,००० है। यह सवेरे आठ बजे खुलती है तथा रात को दस बजे बन्द हो जाती है। ज़नरल लायब्रेरी के अतिरिक्त बीस विभागीय पुस्तकालय हैं। विश्वविद्यालय में तीन अजायबघर हैं। खेलने के लिए बड़े-बड़े

मैदान हैं और तैरने के लिए सरोवर हैं। मिचीगन विश्वविद्यालय का स्टेडियम देश के बड़े स्टेडियमों में से एक है। इसमें ६७,००० लोग बैठ सकते हैं। विश्वविद्यालय का अपना चिकित्सालय है। स्वास्थ्य सेवा-विभाग भी है, जिसमें प्रत्येक विद्यार्थी की प्रवेश से पूर्व अच्छी तरह जाँच होती है। हर विद्यार्थी को लाइन में नंगा खड़ा होना पड़ता है। और उसके शरीर के हर हिस्से को डाक्टर लोग गौर से देखते हैं। मेरी भी क़रीब ढाई घण्टे तक देखभाल हुई थी।

विदेशी विद्यार्थियों के लिए अन्तर्राष्ट्रीय केन्द्र बना हुआ है जहाँ बैठने और खेलने का अच्छा इन्तज़ाम है। पास में ही 'मिचीगन यूनियन' है जहाँ अधिकतर पुरुष ही खाना खाते हैं। 'मिचीगन लीग' में अधिकतर लड़कियाँ खाना खाती हैं परन्तु यहाँ सहशिक्षा है और लड़के लड़कियाँ साथ बैठकर पढ़ते हैं।

विश्वविद्यालय काफ़ी छात्रवृत्तियाँ और फैलोशिप भी देता है। यहाँ अधिकतर विद्यार्थी पढ़ते भी रहते हैं और अपना ख़र्च निकालने के लिए पार्ट टाइम नौकरी भी करते रहते हैं। विदेशियों को यहाँ नौकरी करने से पहले इमीग्रेशन एथौरिटीज लेनी पड़ती हैं।

विद्यार्थी भी यहाँ कई तरह से रहते हैं—कुछ डौरमेटरीज़ में, कुछ रेजीडेन्स हॉल में और कुछ प्राइवेट घरों में। मैं तो एक प्रायवेट मकान में एक कमरा क़िराये पर लेकर रहता हूँ। विश्वविद्यालय का अपना बिजलीघर है। हीटिंग सिस्टम भी अपना है। गर्म पानी करने का ढंग अलग है जिससे नलों में चौबीस घण्टे गर्म पानी आता है। विश्वविद्यालय की निजी पुलिस है और क़ायदे कानून भी अपने हैं।

विश्वविद्यालय के पास ही एक छोटा सा बाज़ार है, जिसे यहाँ कैम्पस कहते हैं। ऑन आर्बर एक छोटा सा कस्बा है। इसकी जनसंख्या २६८१५ है। शहर तो छोटा है, परन्तु साफ़-सुथरा है। सड़कें चौड़ी-

चौड़ी हैं। मकान बहुत ऊंचे तो नहीं, परन्तु पांच छः मंज़िल के अवश्य हैं।

हर ओर पेड़ हैं, हरी हरी घास है और सिमेंट की साफ सुथरी पटरियां हैं। यहां अक्सर संगीत-आयोजन भी होते हैं। नाटक भी होते हैं। बड़े-बड़े वक्ताओं के भाषण भी होते हैं। आने वाले फॉल सैशन में भारत के डा० राधाकृष्णन भी भाषण देने के लिए आमंत्रित किये गये हैं। श्रीमती विजयलक्ष्मी पंडित ने भी यहाँ भाषण दिया था। श्री मेहता जो भारत के आजकल राजदूत हैं पिछले वर्ष भाषण देने आये थे। मिचीगन विश्वविद्यालय अमेरिका का बहुत बड़ा विश्वविद्यालय है। इसका स्तर बहुत ऊंचा है।

मिचीगन विश्वविद्यालय और वहां की शिक्षा पद्धति की जानकारी के बाद तुम चाहोगी कि कुछ जानकारी मिचीगन राज्य के बारे में भी हो। इस राज्य में अमरीकियों से पहले अमेरिकन-इन्डियन्स रहते थे। मिचीगन नाम भी इन्हीं का दिया हुआ है। १६१८ में फ्रांस के लोगों ने अमेरिकन-इंडियन्स को परास्त करके अपना राज्य स्थापित कर लिया था। इनके बाद अंग्रेज़ों ने भी आना शुरू कर दिया और इस राज्य के काफ़ी भूभाग पर आधिपत्य जमा लिया। परन्तु अमेरिकन-इन्डियन्स अंग्रेज़ों को पसन्द नहीं करते थे। वह अंग्रेज़ों के ख़िलाफ लड़े परन्तु जीत न सके। अमरीकी क्रांति (१७७५–८३) के बाद जो लड़ाई अमेरिकन और ब्रिटिश में हुई थी उसमें अमेरिकनों ने मिचीगन राज्य जीत लिया था।

इस राज्य का क्षेत्रफल ५८,२१६ वर्गमील है, जिसमें से १,१६४ वर्गमील में कई झीलें हैं। इस राज्य की आबादी १६५० की जनसंख्या के अनुसार ६,३७१,७६६ थी। आबादी के लिहाज से इस राज्य का दर्जा अमेरिका में सातवाँ है। यह राज्य एक बड़ा अमीर और खुशहाल

राज्य माना जाता है। मिचीगन राज्य में बहुत से बड़े-बड़े कारखाने हैं। यहाँ दूध, दही, फल इत्यादि बहुत होते हैं। ऑटोमोबाइल इन्डस्ट्री का यह राज्य केन्द्र है। यहाँ संसार के सब देशों से अधिक कारें और हवाई जहाज़ बनाए जाते हैं। विश्वप्रसिद्ध कारों के मॉडल यहाँ ही निर्मित होते हैं। मुझे याद है कि जब मैं दिसम्बर १६४८ में फोर्ड असेम्बली लिव देखने डिट्राइट गया जो ऑन आर्बर से ३५ मील दूर है तो देखकर हैरान हो गया कि हर एक मिनट के बाद दो कारें बन कर बाहर आ जाती हैं, जैसे कोई कुम्हार खिलौने बना बना कर बाहर रखता जाता हो, फोर्ड असेम्बली लिव में हज़ारों आदमी और औरतें काम करती हैं। 'जनरल मोटर्स' का कारख़ाना भी यहाँ पर ही है।

जो रंगीन फोटो मैंने डा० स्वामी के साथ भेजा था वह डिट्राइट नदी के किनारे लिया गया था। मिचीगन और कैनेडा पास-पास ही हैं। सिर्फ डिट्राइट नदी ही इन्हें अलग करती है।

मिचीगन राज्य के बड़े-बड़े शहरों के नाम ये हैं—डिट्राइट, डियरबोर्म, फ्लिन्ट, ईस्टलेसिंग, ग्राण्डरेपिड्स, बाटबिल क्रेक, जैकसन आदि। ईस्ट लेसिंग इस राज्य की राजधानी है।

इस राज्य में बड़ी-बड़ी झीलें हैं और जंगल भी बहुत हैं। ऑन आर्बर से बाहर जाकर देखने से मालूम होता है कि हर तरफ़ झीलें हैं, जंगल हैं और हर ओर हरियाली है। यहाँ पर सर्दी भी बहुत पड़ती है।

मिचीगन झील जो ३०७ मील लम्बी है और ११८ मील चौड़ी है अमेरिका में तीसरे नम्बर पर है। यह समुद्र-तट से ५७६·७६ फ़ीट ऊंची है। इस झील में काफी बड़े-बड़े जहाज़ भी चलते हैं जिनमें अक्सर इधर से सामान लाया और ले जाया जाता है।

मुझे मिचीगन विश्वविद्यालय और मिचीगन राज्य दोनों ही पसन्द

हैं। परन्तु जितना मुझे अपना देश प्रिय है उतना प्रिय संसार का कोई भी देश नहीं। यह कथन भी सच है—'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी'।

अगले पत्र में मैं वाशिंगटन डी० सी० में ठहरने का हाल लिखूँगा।

: १० :

ऑन आर्बर से वाशिंगटन को प्रस्थान तथा लायब्रेरी ऑफ कॉंग्रेस में प्रशिक्षण

९२७ सिलवन एवेन्यू
एन० आर० वर्ग
मिचीगन (यू० एस० ए०)
ता० १० जुलाई, १९५४।

आठवें पत्र में मैं लिख चुका हूँ कि मैंने यूनाइटेड नेशन्स न जाकर लायब्रेरी ऑफ कॉंग्रेस में दो मास व्यावहारिक प्रशिक्षण लेने का निश्चय कर लिया था। इसका सबसे बड़ा कारण यह था कि लायब्रेरी ऑफ कांग्रेस संसार की सबसे बड़ी लायब्रेरी है। इसलिए इसमें प्रशिक्षण प्राप्त करना बड़ा लाभदायक रहेगा। यूनाइटेड नेशन्स के पुस्तकालय में इसके बाद ज़ाने का इरादा कर लिया था।

मैं वाशिंगटन डी० सी० के लिए १७ जून, १९४९ की शाम को ५-३० की रेल से रवाना हो गया। क़रीब ४ बजे मेरे कुछ ख़ास मित्रों ने मिचीगन विश्वविद्यालय जनरल लायब्रेरी की सीढ़ियों पर ग्रुप फ़ोटो लिये, जो मुझे वाशिंगटन जाने के बाद श्री बागची ने भेजे थे। वे चित्र मेरे पास हैं, तुम्हें दिखाऊँगा। चित्र लेने के बाद हम लोग मिचीगन यूनियन गये और कॉफी इत्यादि पीकर वह लोग मेरे साथ घर आये और वहाँ से सामान लेकर वह मुझे स्टेशन छोड़ने आये।

यह तो स्वाभाविक है कि ऑन आर्बर छोड़ते समय मुझे कुछ महसूस हुआ; परन्तु वाशिंगटन जाकर जब काम में लग गया तो सब ठीक

हो गया। वाशिंगटन डी० सी० मैं सवेरे आ गया था। वहाँ रहने का इन्तज़ाम मैंने अन्तर्राष्ट्रीय गृह में पहले से ही पत्र द्वारा कर लिया था। लायब्रेरी ऑफ काँग्रेस में १ जुलाई से प्रशिक्षण प्रारम्भ करना था। मेरे पास सैर करने को दो सप्ताह थे। इन दो सप्ताहों में मैंने वाशिंगटन डी० सी० जो अमेरिका की राजधानी है, खूब देखी।

शायद तुम वाशिंगटन डी० सी० के बारे में कुछ अधिक जानना चाहो इसलिए कुछ खास बातें लिखता हूँ।

वाशिंगटन डी० सी० अमेरिका की राजधानी है। १९४० की जनगणना के अनुसार उसकी आबादी ६६३,०९१ है। १९४८ में इसकी आबादी क़रीब ८,६३,००० थी। इस शहर की नींव १७९२ में डाली गई थी और इसका नक्शा बनाने वाला पीयर ला एनफेंट था। राष्ट्रपति के ह्वाइट हाउस (White House) की बुनियाद भी इसी साल में पड़ी थी और कैपीटल बिल्डिग का बनना १७९३ में शुरू हुआ। अमेरिका की कांग्रेस ने अपनी पहली सभा इसी शहर में १८०० में की और टॉमस जैफरसन को अमेरिका का वाशिंगटन डी० सी० में पहला राष्ट्रपति चुना। १८१४ में अंग्रेजों ने इस शहर को तोड़ फोड़ कर बरबाद कर दिया और राष्ट्रपति के ह्वाइट हाउस को भी आग लगा दी; परन्तु फिर धीरे-धीरे इसकी हालत सुधरनी शुरू हुई। अमेरिका के गृहयुद्ध ने भी इसकी तरक्की में बहुत बाधा डाली। परन्तु कन्फैडेरेट्स की पराजय के बाद इसकी तरक्की बिना किसी बाधा के होनी शुरू हो गई। चन्द वर्षों में ही यह शहर ७० वर्ग मील में फैल गया और अच्छी-अच्छी इमारतें, बाग, बगीचे बनने शुरू हुए। वाशिंगटन डी० सी० के बड़े-बड़े पार्क ये हैं—पोटोमैक, रोकक्रैक, ऐनाकोशिया एवं राष्ट्रीय ज्योलॉजीकिल पार्क। यहाँ की बड़ी-बड़ी इमारतों के नाम ये हैं—कैपीटल बिल्डिग जहाँ काँग्रेस और सीनेट की सभाएँ होती हैं; लायब्रेरी आफ़ काँग्रेस जो
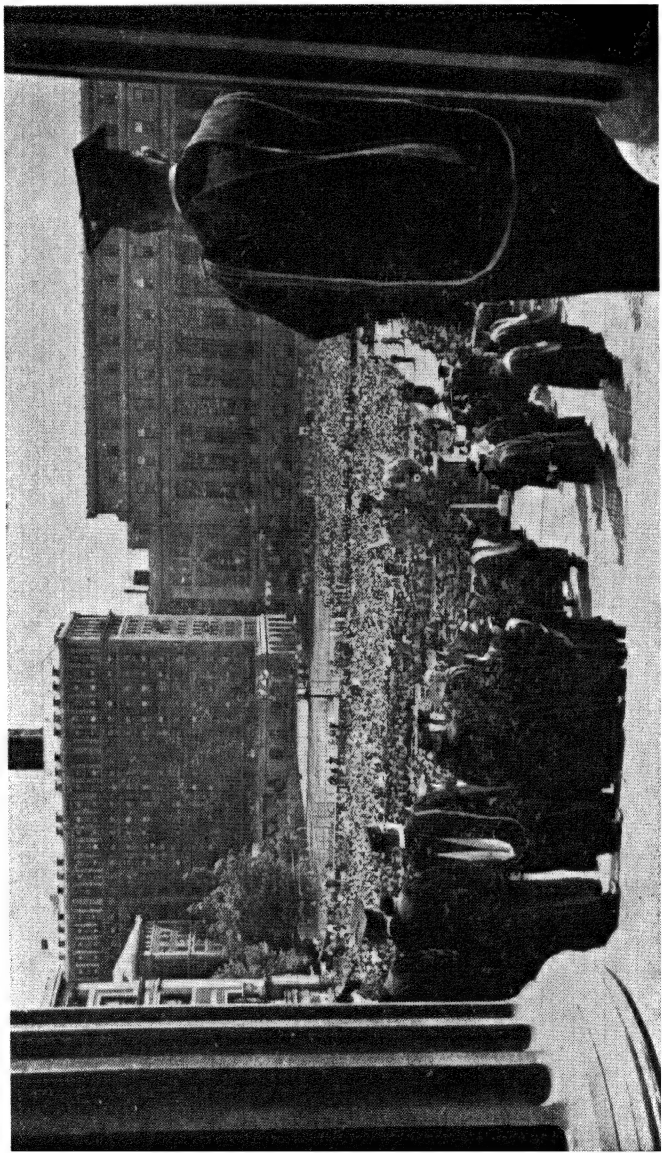
कोलम्बिया विश्वविद्यालय

संसार का सबसे बड़ा पुस्तकालय है; फोलगर शेक्सपीयर स्मृति पुस्तकालय जो संसार में सबसे बड़ी शेक्सपीयर-लायब्रेरी है और संगमरमर की बनी हुई है; राष्ट्रीय पुरातत्त्व संग्रहालय भवन; यहाँ मैंने १९५० में एक मास व्यावहारिक प्रशिक्षण प्राप्त किया था; कॉंस्टीट्यूशनल हाल, सुप्रीम कोर्ट भवन, नेशनल गैलरी आफ आर्ट और पेन्टागौन जो कि संसार में सबसे बड़ा लड़ाई का दफ़्तर है। यहाँ भी मैं अपनी व्यावहारिक प्रशिक्षा के सिलसिले में फोटो डुप्लीकेशन मशीनें देखने गया था। साथ ही कोरकोरन गैलरी आफ आर्ट, वाल्टर रीड हॉस्पीटल तथा यू० एस० नैवल आब्जर्वेटरी की इमारतें प्रमुख हैं।

वाशिंगटन डी० सी० चूंकि अमेरिका की राजधानी है इसलिए यहां बहुत से स्टैच्यू और नेशनल मॉन्यूमेन्ट्स हैं। उनमें से सुप्रसिद्ध ये हैं—वाशिंगटन मेमोरियल, लिंकन मेमोरियल और टॉमस जैफरसन मेमोरियल। प्रथम और दूसरे विश्वयुद्ध में जो सिपाही मरे थे उनकी यादगार में आर्लिंगटन नेशनल सिमैट्री है जोकि देखने योग्य है। मेरे एक मित्र ने मेरा एक चित्र यहाँ लिया था, वह भी मेरे पास है।

वाशिंगटन डी० सी० में कई बड़े-बड़े शिक्षा संस्थान और विश्वविद्यालय भी हैं। उनके नाम ये हैं—अमेरिका जार्ज टाउन विश्वविद्यालय, जार्ज वाशिंगटन विश्वविद्यालय, हावर्ड विश्वविद्यालय जोकि नीग्रो लोगों का है, स्मिथसोनियन इन्स्टीट्यूशन, ब्रुकिंग्स, इन्स्टीट्यूशन, कार्नेगी इन्स्टीट्यूशन ऑफ वाशिंगटन एवं अमेरिकन विश्वविद्यालय।

दिनांक १८ से ३० जून तक मैं वाशिंगटन डी० सी० की इन बड़ी-बड़ी इमारतों और शिक्षा-संस्थाओं को देखने में तल्लीन रहा। इनको मैंने पैदल चलकर, बस में बैठकर और मित्रों की कारों में चढ़कर देखा। यहाँ मैं एक रोचक कहानी सुनाता हूँ। १८ जून की दोपहर को जब मैं कैपीटल बिल्डिंग देख रहा था तो मुझे एक दम्पति मिले।

उनकी शादी हाल ही में हुई थी। पति एक मैडीकल डाक्टर था और पत्नी एक स्पेनिश लड़की थी। पत्नी ने मुझ से पूछा कि क्या मैं भारत से आया हूँ। मैंने कहा, हाँ। फिर उसने पूछा कि क्या मैं नयन तारा ? पंडित को जानता हूँ। मैंने कहा व्यक्तिगत रूप में तो नहीं, हाँ नाम मैंने ज़रूर सुना है। फिर वह कहने लगी कि मैं उसकी सहपाठिनी थी, जब वह वहाँ पढ़ती थी। यह दम्पति बड़ा आदर-सत्कार करने वाला था। उन्होंने मुझे अपनी कार में दो दिन तक सैर कराई और क़रीब-क़रीब वाशिंगटन डी० सी० की सभी बडी-बड़ी इमारतें दिखाई। वह डाक्टर वेटेरन हॉस्पीटल में एक अधिकारी था। एक बार मुझे उसने कैथोलिक चर्च में आने का निमन्त्रण दिया और अपनी सास और मित्रों से भी परिचय कराया।

मैं अपने राजदूतावास में भी गया। उन दिनों श्रीमती विजयलक्ष्मी पंडित भारतीय राजदूत थीं। उनसे भी मिला था।

इसी प्रकार सैर करते-करते दो सप्ताह बीत गये। पहली जुलाई से 'लायब्रेरी ऑफ़ काँग्रेस' में मेरी ट्रेनिंग शुरू हुई। पहले दिन तो सब ट्रेनिंग लेने वालों को 'लायब्रेरी ऑफ कांग्रेस' के बारे में बताने के लिए फिलम दिखाई गई और फिर हर सैक्शन और विभाग के अध्यक्ष से मेरा परिचय कराया गया और मैंने उनके विभागों के बारे में कुछ जानकारी प्राप्त की। परन्तु मेरा अधिक समय 'ओरियण्टलिया डिवीज़न' के 'इण्डिया सैक्शन' में बीता। मेरे अध्यक्ष डा० पॉलमैन थे जो १९५० से १९५२ तक नई देहली में कल्चरल अटैची भी रहे थे। यह बड़े ही नेक और सच्चरित्र व्यक्ति हैं और भारतीय साहित्य और सभ्यता से पूरी तरह परिचित हैं। मैंने इनके सैक्शन में बहुत कुछ सीखा।[1]

---

[1] डा० हूमल के अवकाश प्राप्त करने पर अब डॉ० पॉलमैन 'ओरियण्टलिया डिवीजन' के अध्यक्ष हो गए हैं।

३१ अगस्त को मेरी ट्रेनिंग 'लायब्रेरी आफ़ कांग्रेस' में समाप्त हो गई थी। इसके बाद मुझे भारतीय राजदूतावास के 'सूचना-सेवा-विभाग, के पुस्तकालय को संभालने का स्वर्णावसर प्राप्त हुआ। मुझे यहाँ आये दो मास ही हुए थे कि यूनाइटेड नेशन वालों ने मुझे यह लिखा कि अगर मैं वहाँ आना चाहता हूँ तो शीघ्र सूचित करूँ। मैंने सोचा कि क्यों न मैं यूनाइटेड नेशन में जाऊँ। मैंने दो मास की छुट्टी माँगी; परन्तु छुट्टी कैसे मिलती, सिर्फ़ दो मास पहले तो मैंने यहाँ काम प्रारम्भ किया था। यूनाइटेड नेशन्स जाने का चाव इतना बढ़ा कि मैंने नासमझी और जल्दबाज़ी से त्यागपत्र दे दिया और यू० एन० जाकर व्यावहारिक प्रशिक्षण लेने लगा।

अगर मैं भारतीय राजदूतावास से त्यागपत्र न देता तो हो सकता था कि आज मैं विदेश-सेवा में एक अधिकारी होता। परन्तु मुझे अफ़सोस नहीं, शायद ईश्वर ने मुझे अन्य महान् कार्य करने के लिए वह मौक़ा दिया था जिसकी वजह से मैं पी० एच० डी० कर सका और मुझे निरन्तर कार्य करने की प्रेरणा मिलती रही।

इन चार महीनों में मैंने 'गांधी-बिबलियोग्राफी' पर भी काम किया। दफ्तर के कार्यकाल के बाद करीब तीन घण्टे रोज़ इस पर काम करता था। वाशिंगटन छोड़ने से पहले नवम्बर में मैंने इसे टाइप करा लिया था और यह पाण्डुलिपि २५० पृष्ठ की थी।

इन दिनों मैं अन्तर्राष्ट्रीय भवन में ही रहा। यह भवन क्वेकर्स की तरफ से संगठित है। यह एक छोटा 'अन्तर्राष्ट्रीय भवन' है; परन्तु इसमें संसार के लगभग सभी देशों के विद्यार्थी थे। हर शुक्रवार को कोई न कोई समारोह होता था। नृत्य भी होते थे। परन्तु मैंने तो नाचना सीखा ही नहीं था; इसलिए मुझे तो इसमें हिस्सा लेना ही नहीं था। नाचना तो मैंने आज तक नहीं सीखा, अब तो क्या सीखूंगा।

इस भवन में एक छोटा-सा बगीचा था। इसमें एक नाख का पेड़ था। इस पेड़ पर बड़ी अच्छी कश्मीर की नाखें लगती थीं, जिन्हें हम लोग खाते भी थे। इस भवन का संचालक एक अंग्रेज़ था। उसका एक छोटा लड़का था, जिसका नाम जौनी था। वह बड़ा प्यारा बच्चा था। मैं कभी-कभी उसके साथ खेलता था। हम लोग कभी-कभी पिकनिक पर शहर से बाहर भी जाते थे। वहाँ पर अपना-अपना खाना ले जाते थे और नदी-किनारे बैठकर खाते थे।

वाशिंगटन डी० सी० में कोई भारतीय रेस्टोरेन्ट तो नहीं है पर एक बगदाद रेस्टोरेन्ट है। वहाँ भारतीय प्रकार की खिचड़ी थी। मैं कभी-कभी खाने भी जाया करता था। कई बार उन मित्रों ने भी निमन्त्रण दिया जिनके पास खाना बनाने की जगह तथा सुविधाएं थीं। उन्होंने भारतीय ढंग का भोजन तैयार करके साथ-साथ खाया था। सुदूर अमेरिका में भारतीय भोजन मिल जाने से मालूम होता है कि कोई बड़ी वस्तु मिल गई।

३१ अक्टूबर को मैंने वाशिंगटन छोड़ दिया था और पहली नवम्बर से यूनाइटेड नेशन्स, लेकसक्सेस, न्यूयार्क में काम प्रारम्भ कर दिया था। इसका वृत्तान्त अगले पत्र में लिखूंगा। इसे सुरक्षित रखना।

पंडित नेहरू जब वाशिंगटन डी० सी० आये तो मैं वहीं था। मैं उन को लेने राजदूतावास के अन्य लोगों के साथ हवाई अड्डे पर गया था। उनके बहुत से चित्र लिये गए थे जो मेरे पास हैं।

: ११ :

लेक सक्सेस में दो मास

मैं वाशिंगटन डी० सी० से ३१ अक्टूबर की शाम को चलकर आधी रात के बाद ही न्यूयार्क आ गया था; क्योंकि बस से यहाँ आने में क़रीब ६ घंटे ही लगते हैं। न्यूयार्क से लेकसक्सेस जहाँ पहले यू० एन० का दफ्तर था क़रीब २५ मील है। मैं न्यूयार्क में न रह कर लेक सक्सेस के पास ही रहना चाहता था। इसलिए न्यूयार्क से लगभग ३० मील दूर और लेक सक्सेस से बिलकुल क़रीब एक छोटे से क़स्बे ग्रेटनैक में रहने लगा। वहाँ यू० एन० में काम करने वाले और भी लोग रहते थे। यूनाइटेड नेशन की बसें हमें रोज़ ले जाती थीं और शाम को वापिस छोड़ जाती थीं। ग्रेटनैक में मैं सेकेंक एवेन्ज पर रहता था। यह स्थान बस स्टेशन और रेलवे स्टेशन से करीब आध मील दूर होगा। मेरे मकानदार का नाम था श्रीयुत ग्रीन। यह घर काफी बड़ा था और पास में बगीचा भी था। यह लोग बड़े मिलनसार और खुशदिल थे। इस घर में यूनाइटेड नेशन में काम करने वाले दो विदेशी और भी रहते थे।

मैंने दूसरी नवम्बर से एक नौसिखिए की हैसियत से प्रैक्टीकल ट्रेनिंग शुरू कर दी। एन्टेरेन्स या नौसिखिए वे होते हैं जो अपनी पढ़ाई समाप्त करके कहीं व्यावहारिक अनुभव प्राप्त करते हैं। इस प्रकार का अवसर मुझे सिर्फ़ दो मास के लिए मिला था और प्रत्येक महीने मुझे २५० डालर मिलते थे जो मेरे लिए अधिक थे। मैंने यहाँ के सभी भागों में प्रशिक्षण लिया। किन्तु यू० एन० लायब्रेरी के संदर्भ विभाग में अपना अधिक समय बिताया। जिनके मातहत मैं काम सीख रहा था वे महो-

दय एक अंग्रेज़ थे और उनका नाम था मि० राबर्ट्स। वे बड़े नेक मनुष्य थे और मैंने उनसे बहुत कुछ सीखा।

आप मुझसे ज़रूर प्रश्न करोगी कि यू० एन० क्या है ? इसका क्या उद्देश्य है, क्यों इसकी नीव डाली गई और किसने इसे शुरू किया ? इसकी संक्षिप्त कहानी मैं नीचे लिख रहा हूँ।

अन्तर्राष्ट्रीय संगठन यूनाइटेड नेशन्स का द्वितीय विश्व महायुद्ध के बाद शीघ्र ही 'लीग आफ नेशन्स' की जगह निर्माण हुआ था। यूनाइटेड नेशन्स को राष्ट्रपति एफ० डी० रूजवेल्ट ने १९४१ में एशिया के ख़िलाफ लड़ने वाले देशों को लेकर बनाया। इसका वैधानिक कार्य प्रथम जनवरी १९४१ से प्रारंभ हुआ जबकि २६ राष्ट्रों ने यूनाइटेड नेशन्स की घोषणा में सम्मिलित होकर यह प्रतिज्ञा की कि युद्ध कार्यवाहियाँ मिलजुल कर जारी रखी जायं और अलग-अलग सुलह-शाँति स्थापित न करें। चीन, ग्रेट ब्रिटेन, संयुक्त राज्य अमेरिका और रूस द्वारा प्रकाशित मास्को घोषणा में पहले पहल ३० अक्टूबर, १९४३ को लीग की जगह एक अन्तर्राष्ट्रीय संगठन बनाने की आवश्यकता महसूस हुई थी। ग्रेट ब्रिटेन के अन्तर्गत डम्बरलेन ओक्स काँफ्रेन्स में (फरवरी ४ से ११ तक, सन् १९४५) संयुक्त राज्य अमेरिका व रूस का समझौता ठुकरा दिया गया—सुरक्षा परिषद् में मतदान द्वारा।

याल्टा कान्फ्रेंस में यह निश्चय किया गया कि सभी राज्यों की एक कान्फ्रेंस आयोजित की जाय जो कि अन्ततः १९४२ के यूनाइटेड नेशन्स के घोषणा-पत्र में सम्मिलित कर लिया गया और जिसने कि जर्मनी या जापान में प्रथम मार्च, १९४५ से युद्ध घोषणा की।

बहुत से देशों ने भी युद्ध घोषणाएँ कीं और इस प्रकार सैनफ्राँसिसको में २५ अप्रैल से २६ जून १९४५ तक होने वाली कान्फ्रेंस के लिए यह कार्य वैधानिक हो गया। प्रारंभ में ४६ राष्ट्रों ने भाग लिया;

लेकिन यह पहले ही निश्चित कर लिया गया था कि अर्जेन्टाइना, वलरसा, यूक्रेन एवं डेन्मार्क को भी शामिल कर लिया जाय जो कि अभी मुक्त हुए थे। इन ५१ मूल सदस्यों में एक स्थान पोलैण्ड के लिए भी सुरक्षित था, जोकि एक उत्तरदायी सरकार के लिए एक विवाद में फँसा होने के कारण भाग न ले सका। शेष मूल सदस्य आस्ट्रेलिया, बेलजियम, बोल्विया, ब्राज़ील, कनाडा, चिली, चीन, कोलम्बिया, कोस्टारिका, क्यूबा, चेकोस्लोवेकिया, ईक्वेडर गणतन्त्र, मिश्र, ईथोपिया, फ्राँस, यूनान, ग्वाटेमाला, हैटी, होन्डुरस, भारत, ईराक, ईरान, लेबनान, लायबेरिया, लेम्बर्ग, मैक्सिको, नीदरलैण्ड, न्यूजीलैण्ड, निकारग्वे, नार्वे, पनामा, पैराग्वे, पीरू, फिलिपाइन्स, साउदी अरेबिया, सीरिया, टर्की, दक्षिण अफ्रीका संघ, सोवियट गणराज्य, यूनाइटेड किंग्डम, यूनाइटेड स्टेट्स, यूराग्वे, बेनेज्वेला और यूगोस्लोविया थे; अन्य राष्ट्र जो बाद में सम्मिलित किये गये वे ये थे—अफगानिस्तान, बर्मा, आइसलैण्ड, इजरायल, पाकिस्तान, स्वीडन, थाईलैण्ड, और येनान। सानफ्राँसिसको कान्फ्रेंस ने प्रशासकीय संधि और यूनाइटेड नेशन्स चार्टर बनाया। इस पर २६ जून को हस्ताक्षर हुए और आवश्यक राज्यों द्वारा २४ अक्टूबर को पारित माना गया जोकि यू० एन० दिवस के रूप में विख्यात है।

जनरल एसेम्बली की प्रथम बैठक लंदन में १० जनवरी, १९४६ को हुई और दो दिन बाद सुरक्षा-परिषद् की प्रथम बैठक बुलाई गई। यह तय किया गया कि संयुक्त राज्य में संयुक्त राष्ट्र का कार्यालय रखा जाय। दिसम्बर १९४६ में जनरल असेम्बली ने जॉन डी० रॉकफेलर की ४२,०००,००० रुपये की भेंट मैनहट्टन के निकट पूर्वी नदी के किनारे भूमि भाग खरीदने के लिए स्वीकार की ताकि अस्थायी कार्यालय को जोकि लोकसभा में है उसे स्थायी बना दिया जाय। वर्तमान समय में

संयुक्त राष्ट्र संघ का स्थायी मुख्य कार्यालय न्यूयार्क में है।

संयुक्त राष्ट्र संघ का उद्देश्य विश्वशाँति और सुरक्षा स्थापित करना, राज्यों में परस्पर मैत्री-भाव का विकास करना और अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक, सामाजिक, साँस्कृतिक तथा मानवीय समस्याओं को सुलझाने के लिए सहयोग प्राप्त करना है।

संयुक्त राष्ट्र संघ के बारे में मैंने ऊपर जो लिखा है वह तो बहुत ही कम है। इस पर कई पुस्तकें लिखी गई हैं और आगे भी लिखी जायेंगी; परन्तु इन शब्दों से तुम्हें इस संगठन के बारे में कुछ अन्दाज़ा हो जायेगा। जिन उद्देश्यों को लेकर इसकी बुनियाद रखी गई थी आज तो यह देखा जाता है कि वह एक आशामात्र है। १९५० में जब कोरिया की लड़ाई शुरू हुई थी मैं वहाँ पर ही था। भारत ने संयुक्त राष्ट्र संघ में हिस्सा नहीं लिया। मेरा विश्वास भी संयुक्त राष्ट्र संघ के उद्देश्यों से तभी से ही हिल गया था। हाँ, संयुक्त राष्ट्र संघ ने संसार के देशों की सभ्यताओं, इतिहास और साहित्य को प्रकाशित करने और व्याख्या करने में काफी सहायता की है। आज संयुक्त राष्ट्र संघ के सामने सवाल है कि लाल चीन को स्वीकृत करें या न करें। अमेरिका ऐसा नहीं चाहता। बाकी सब देश चाहते हैं। पिछले सप्ताह की ख़बर के अनुसार अमेरिका के बड़े-बड़े राजनीतिज्ञों का कहना है कि अगर संयुक्त राष्ट्र लाल चीन को स्वीकृत करता है तो वह संयुक्त राष्ट्र से अपने आपको अलग कर लेंगे। इसका मतलब यह हुआ कि या तो संयुक्त राष्ट्र संघ अमेरिका की नीतियों के मातहत चले अन्यथा इसका अस्तित्व ही नहीं। ठीक भी है; अमेरिका संयुक्त राष्ट्र संघ का आधे से अधिक खर्च देता है। संयुक्त राष्ट्र संघ के बारे में मैं विस्तार से फिर सुनाऊँगा।

पहले दो मास मैं संयुक्त राष्ट्र संघ की जनरल असेम्बली और सुरक्षा परिषद् की सभाओं में गया। मेरा यह अनुभव भी अनोखा था।
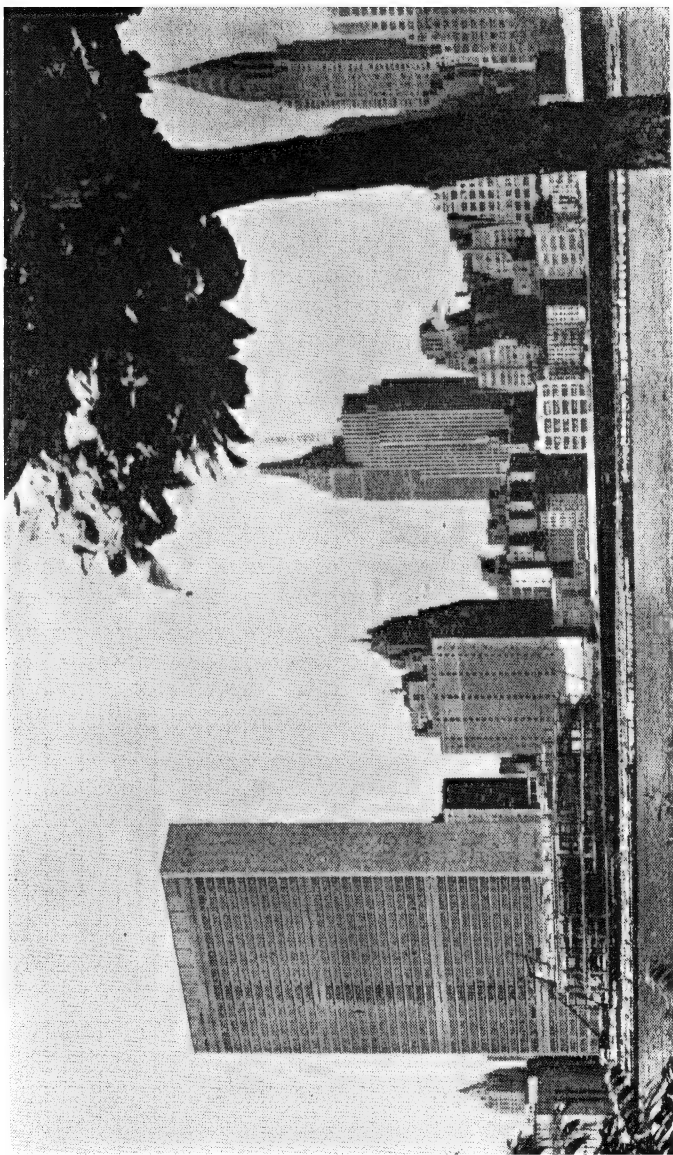
संयुक्त राष्ट्रसंघ का भवन

बहुत बार मैंने सांस्कृतिक-सांझों में भाग लिया। हर सप्ताह एक-न-एक देश अपने यहाँ की सभ्यता का प्रदर्शन करता था। यहाँ पर ही एक अल्पाहारगृह था। वहाँ पर हर देश का खाना बनता था। मैं दोपहर का खाना वहाँ ही खाता था। भारत के स्वर्गीय श्री नरसिंहराव, आर. के. आर. यू. राव, डा० मुदालियार, डा० कुमारप्पा, श्रीमती सुचेता इत्यादि से भी परिचय हुआ।

३१ दिसम्बर को मेरी दो मास की इन्टरेनशिप खत्म हो गई; परन्तु अगले ६ मास के लिए रॉकफेलर फाउण्डेशन की सदस्यता मिल गई। इसका वृत्तान्त मैं अगले पत्र में लिखूँगा।

: १२ :

रॉकफेलर फाउण्डेशन के सदस्य की हैसियत से पर्यटन

९२७ सिलवन एवेन्यू
एन० आर० वर्ग
मीचगन (यू० एस० ए०)
ता० ३ अगस्त, १९५४

२० दिसम्बर, १९४९ को दोपहर मुझे यह शुभ समाचार प्राप्त हुआ कि मैं रॉकफेलर-फाउण्डेशन का एक सदस्य चुन लिया गया हूँ। यह समाचार मुझे यूनाइटेड नेशन्स की लायब्रेरी के डायरेक्टर डा० मिलाम द्वारा मिला था। इसको सुनकर मुझे अतिशय प्रसन्नता हुई। क्योंकि इस फाउण्डेशन का फैलो होना साधारण बात नहीं। मेरा इन्टरव्यू तो इस फैलोशिप के लिए दो सप्ताह पहले ही हो चुका था किन्तु मुझे कोई ख़ास आशा नहीं थी। यह सदस्यता मुझे सिर्फ छः महीने के लिए मिली थी यानी प्रथम जनवरी से तीस जून १९४९ तक। इस के अनुसार मुझे हर मास १७५ डालर, सफर के लिए प्रथम श्रेणी का रेल किराया और होटल में ठहरने का खर्च यानी मुझे लगभग २५० डालर या १२५०) रुपये मासिक मिलते थे। मैंने कुल धन राशि व्यय नहीं की, जो बच गये थे वापस भारत ले आया था। उसके रुपये बनवा लिए थे, जो लगभग ८००० रुपये थे।

२४ दिसम्बर की शाम को यूनाईटेड नेशन्स में क्रिसमस पार्टी

थी। इसमें मैं यू० एन० लायब्रेरी के पूरे स्टाफ के साथ सम्मिलित हुआ था। मुझे याद है कि यू० एन० लायब्रेरी के असिस्टेण्ट डायरेक्टर जो फ्रांस के एक लायब्रेरियन थे उन्होंने और लोगों से मेरा परिचय कराते हुए बताया कि यह तो हमारा गोद लिया बेटा है; यानी यह हमारे पुस्तकालय में काम सीख रहा है और रॉकफेलर का सदस्य है। यह सब जानकर सभी लोग खुश हुए थे।

जब मै यूनाईटेड नेशन्स में काम सीख रहा था तो लेक सक्सेस के पास ग्रेटनैक नामक कस्बे में सेकेंक आर्क पर रहता था। यह स्थान लेक सक्सेस से क़रीब दस मील दूर है। सवेरे और शाम को यू० एन० की बस में ही आया-जाया करता था। यू० एन० के बहुत से कर्मचारी यहाँ ही रहते थे। जिनके पास अपनी कारें थीं वह कारों से आते-जाते थे और जिनके पास कारें नहीं थीं वे बसों में ही आते-जाते थे।

न्यूयार्क से ग्रेट-नैक क़रीब ४० मील दूर है। जब कभी न्यूयार्क जाना होता था तो लाँग आइलैण्ड इलैक्ट्रिक ट्रेन से जाता था। यह रेल छोटे-छोटे स्टेशनों पर रुक-रुक कर जाती थी और क़रीब ३५ मिनट लेती थी।

ग्रेट-नैक का घर भी बड़ा अच्छा था। इस मकान की तीसरी मंज़िल पर मैं रहता था। कुछ दिन मैंने वहाँ खाना भी बनाया। कभी-कभी पालक का साग और आलू-मटर आदि बनाता था तथा दूध और डबल रोटी के साथ खा लेता था। एक दिन पूड़ियाँ भी बनाईं, किन्तु बड़ी-बड़ी हो गईं। हर शनिवार और इतवार की शाम को खाना बना कर और खाकर मूवी चला जाता था और वहाँ क़रीब चार घण्टे तक बैठा रहता था। तुम्हें मालूम होगा कि यहाँ तो मूवी सुबह के ११ बजे से चलती है और रात के १२ या १ बजे ख़त्म हो जाती है। कोई किसी समय आये और बैठ जाय। भारत जैसा रिवाज़ यहाँ नहीं कि ठीक

समय पर फ़िल्म शुरू होने पर आये और फ़िल्म समाप्त होने पर सबको हॉल छोड़ना पड़ता है। यहाँ के सभी पिक्चर-हाउस एअर कण्डीशण्ड हैं। गर्मी में ठंडे और जाड़े में गर्म रहते हैं। यहाँ के पिक्चर हाउसों में सिर्फ एक ही दर्जा होता है। टिकिट लेकर कोई कहीं भी बैठ सकता है। ऊपर गैलरी में या नीचे की ओर आगे की सीट पर अथवा पीछे की सीट पर। हमारे देश में तो सिनेमाओं में कई दर्जे होते हैं।

रात को पिक्चर देखने के बाद भूख लग जाती थी तो आईस-क्रीम खा लिया करता था। उन दिनों मुझे 'बनाना श्लिट आईसक्रीम' का बड़ा शौक़ था। खाते ही पेट भर जाता था। 'ग्रिल्ड सैण्डविच' भी खाता था। फिर रात को आकर सो जाया करता था। क्योंकि उन दिनों मैं भी अपनी उसी पुस्तक पर काम कर रहा था जो अब मैंने पी० एच० डी० के लिए समाप्त की है; मुझे कार्याधिक की वजह से समय कम मिलता था और जितना समय मिलता था उसमें या तो फ़िल्म देखता था या न्यूयार्क में म्यूजियम इत्यादि देखता था।

जितने दिन भी मैं यूनाईटेड नेशन्स में रहा मेरा जीवन बड़ा ही मनोहर रहा। हर देश के नेताओं से मिलने का अवसर मिलता था। उनके भाषण सुरक्षा-परिषद् और जनरल असेम्बली में सुनने को मिलते थे। नित्य शाम को किसी न किसी देश के साँस्कृतिक रीति-रिवाजों और सभ्यता पर फिल्म दिखाई जाती थी। जहाँ कहीं भी जाता बड़ा सम्मान होता था।

यूनाईटेड नेशन्स में उन दिनों एक वालिण्टर सर्विस होती थी। इस विभाग में अमेरिका के संगठनों और प्रायवेट व्यक्तियों से निमन्त्रण आते थे। मेरे पास भी कई बार उनके घर जाने के निमन्त्रण आये। काम अधिक होने के कारण सभी निमन्त्रणों को तो स्वीकार न कर सका; परन्तु तीन बार बाहर गया। एक बार हरिशहुंग गया था। क्रिस-

मस के दिनों में। दूसरी बार न्यूयार्क के पास एक कस्बे में गया था। और तीसरी बार एक अमरीकी किसान के पास रहा था। ये लोग बड़ी आवभगत करने वाले होते हैं; परन्तु अब ये भारत के ख़िलाफ होते जा रहे हैं। कारण तो तुम्हें मालूम ही है। लेकिन भारत तो सदा शाँति का ही हामी रहा है और रहेगा। हमें किसी से लड़ना नहीं है और न लड़ने वालों का हाथ बँटाना है।

यूनाईटेड नेशन्स में करीब ५० भारतीय और भी थे। सर बैन्गल राव उन दिनों प्रमुख प्रतिनिधि थे। उनका स्टाफ भी काफी था और इसके अलावा अन्य भारतीय भी काम करते थे। उनमें से दो मेरे बड़े प्रिय मित्र भी थे। एक तो देहली से ही आये थे जो कभी 'नायडू कालिज' में पढ़ते थे। वह यहाँ अपनी पत्नी के साथ थे और उनके दो छोटे-छोटे लड़के भी थे। कई बार उन्होंने अपने घर पर मुझे प्रीतिभोज के लिए बुलाया। आजकल वह भारत सरकार के एक बड़े अधिकारी है। इसके अतिरिक्त एक बंगाली भाई भी थे। वह भी आजकल भारत में ही हैं।

यूनाईटेड नेशन्स की लायब्रेरी में करीब २० देश काम करते थे। इन सबों से मिलना और उनके साथ एक जगह पर काम करना बड़ा ही अन्तर्राष्ट्रीय लगता था। मैं यह कह सकता हूँ कि यूनाईटेड नेशन्स में काम करने से संसार के बारे में मेरा अनुभव बहुत बढ़ा है। इन छै मासों में रॉकफेलर फाउण्डेशन के फैलो की हैसियत से मेरा कार्यक्रम निम्न प्रकार था—

१—यूनाईटेड नेशन्स में प्रथम चार मास

(जनवरी से अप्रैल तक)

अ—दो मास—रिफ्रैन्स और डॉक्यूमेन्टेशन विभाग में

१. रिफ्रैन्स कार्य (विशद रूप में)

२. विशेष विभागों का निरीक्षण

३. कुछ दिनों यू० एन० पुरातत्त्व एवं मानचित्र संग्रह विभाग में ।

ब—एक मास विभागीय पुस्तकालयों में बिताया—

१. सुरक्षा परिषद पुस्तकालय में दो सप्ताह और

२. आर्थिक विभाग पुस्तकालय में दो सप्ताह ।

२—पाँचवा मास (मई)

यूनाईटेड नेशन्स की लायब्रेरी का पूर्ण व्यावहारिक अनुभव प्राप्त करने के बाद मैंने निम्नलिखित पुस्तकालयों और शिक्षण-संस्थानों का निरीक्षण किया—

१. न्यूयार्क नगर एवं विसिनिटी

अ—कोलम्बिया विश्वविद्यालय और उसके सभी विभागीय पुस्तकालय, टीचर्स कालिज पुस्तकालय समेत ।

आ—न्यूयार्क पब्लिक लायब्रेरी—केन्द्रीय और शाखा पुस्तकालय ।

ब—विशेष विषयों के पुस्तकालय, जैसे इंजीनियरिंग सोसाइटीज पुस्तकालय, मेडीकल पुस्तकालय तथा इसी प्रकार के अन्य पुस्तकालय ।

स—मॉन्टक्लेयर, न्यूजैरी पब्लिक लायब्रेरी और उसकी शाखाएं ।

द—येल विश्वविद्यालय पुस्तकालय ।

२. बोस्टन, मॉस

अ—हार्वर्ड विश्वविद्यालय पुस्तकालय, वाइडनर, हार्वर्ड कालिज व्यापार प्रशासन तथा अन्य पुस्तकालय ।

आ—बोस्टन पब्लिक लायब्रेरी ।

ब—मासाचूसैट्स इन्स्टीट्यूट ऑफ टैक्नोलॉजी लायब्रेरी ।

वाशिंगटन डी० सी०

अ—लायब्रेरी ऑफ कॉंग्रेस

ब—आर्मी मैडीकल लायब्रेरी।

स—पान अमेरिकन यूनियन लायब्रेरी।

४. **नॉनविला, टेन (एक सप्ताह तक)**

टेनैसी घाटी के अधिकारियों के निमंत्रण पर मैं उस प्रदेश की देहाती-पुस्तकालय-सेवा कार्यों को देखने गया।

छठां मास (जून)

यू. एस. राष्ट्रीय पुरातत्त्व, वाशिंगटन डी. सी.

६. अपने सायंकाल के समय का सदुपयोग करने के लिए मैंने यूनाईटेड नेशन्स, लेक सक्सेस में फ्रैंच भाषा सीखने के लिए सायं-कालीन कक्षाओं में भाग लिया।

यह मेरा निजी अनुभव है कि मैं जहाँ भी गया वहाँ सभी जगह मेरा अच्छा स्वागत सत्कार हुआ। जब मैं टेनेसी गया तो मुझे डर था कि मेरे रंग के कारण किसी को तकलीफ़ न हो, परन्तु कोई ख़ास घटना नहीं घटी।

आपको शायद मालूम होगा कि जैसे हमारे यहाँ हरिजन भाई हैं उसी तरह यहाँ भी हब्शी लोग हैं जिनको समाज में उतना दर्जा नहीं मिलता। इनके लिए बैठने का स्थान अलग है, विद्यालय अलग हैं और अन्य सब चीज़ें अलग हैं। इसके बारे में मैं फिर कभी विस्तार से लिखूँगा।

मैंने प्रथम श्रेणी की बजाय कोच क्लास में यात्रा की ताकि कुछ डालर बच जायें। प्रथम श्रेणी में भी मैं बैठा जिसे यहाँ पुलमैन कहते हैं, किन्तु सदैव नहीं। होटलों में ठहरने की बजाय मै 'यंग मैन्स क्रिश्चियन एसोसिएशन्स' में ही ठहरा।

यहाँ डेढ़ से दो डालर तक का कमरा मिल जाता है जो होटल से

सस्ता है। इसके अतिरिक्त होटल से वाई० एम० सी० ए० का वातावरण भी अच्छा है।

अमेरिका-पर्यटन का पुरोगम ३० जून को समाप्त हो गया था। इसके पश्चात् मुझे यूनाईटेड नेशन्स पुस्तकालय में एक बड़ी अच्छी जगह मिल रही थी। लेकिन माताजी की तबियत दिन-पर-दिन खराब होती जा रही थी। वह जैसा कि आप जानती हैं मेरी अनुपस्थिति के कारण अर्ध विक्षिप्तावस्था में थीं। इधर मैं भी स्वदेश लौटने का इच्छुक था। इसके अलावा अगर मैं और अधिक दिन वहाँ रहता तो 'रॉक फेलर फाउण्डेशन' मेरे भारत वापिस आने का किराया ज़ब्त कर सकता था। ऐसी दशा में मुझे जहाज़ का स्वयं जेब से किराया देना पड़ता। इसलिए मैंने निश्चय किया कि भारत वापिस आऊं। फलत: १४ जुलाई को न्यूयार्क से एक स्टीमर द्वारा चल पड़ा जो अमेरिकन लाइन्स का था। मेरे मन में यह अटल निश्चय था कि मैं पी० एच० डी० करने फिर आऊँगा। ईश्वर ने मेरी सहायता की और मै पी० एच० डी० करने आया और डाक्टरेट में सफलता प्राप्त की।

पहली बार न्यूयार्क से लंदन की यात्रा का पूरा हाल मैने लिखा था जो लंदन आने पर पूज्य पिता जी को भेज दिया था। वह सब एक फ़ाइल में है। लंदन से बम्बई तक का भी हाल मैं समय-समय पर पत्र द्वारा लिखता रहा था। यूरोप पर्यटन का विवरण भी लिखा है।

मेरी प्रथम विदेश यात्रा का यह वृत्तांत शायद आपको पसंद आया होगा। जब मैंने दो वर्ष पहले यह कहानी तुम्हें सुनानी शुरू की थी तो मुझे आशा थी कि इसे विशद रूप में सुनाऊँगा; परन्तु अध्ययन और अनुसंधान कार्य का इतना ज़ोर रहा कि मैं अधिक समय इस ओर न दे सका। यह कहानी का सिर्फ एक ख़ाका है। जब कभी समय मिलेगा तो बैठकर विवरणसहित लिखूँगा और इस लायक बनाने की

कोशिश करूँगा कि और भी लोग इससे आनंद उठा सकें।

मेरा यह भी विचार है कि अमेरिका के सामाजिक, राजनीतिक आर्थिक और शैक्षणिक जीवन पर एक-एक अध्याय लिखूँ और उस जीवन और वातावरण पर अपनी राय भी प्रकट करूँ। समय मिलने पर मैं ऐसा लिखूँगा।

९२७, सिल्वन
ऑन आर्बर,
मिचीगन (यू० एस० ए०)
२१ जुलाई, १९५०

प्रिय प्रेम,

प्रथम बारह पत्रों में मैंने तुमको भारत से चलने और अमेरिका में ठहरने का विवरण लिखा था। आशा है वह तुम्हें रुचिकर लगा होगा। तेरह, चौदह और पन्द्रहवें पत्रों में मै तुमको अपनी डायरी के उन पृष्ठों की नक़ल करके भेज रहा हूँ, जो मैंने अपने भ्रमण के समय में 'वीन-डाम' और 'एस० एस० केन्टन' नामक जहाज़ में लिखे थे।

न्यूयार्क से लंदन

एन० ए० एस० एम०
हालैण्ड-अमेरिका लाइन

आर० एम० एस०
जुलाई १८ से २० तक, १९५०
महासागर

हमारा जहाज वीनडाम जिसका चित्र आपकी सेवा में भेज रहा हूँ आज दोपहर के ठीक पौने तीन बजे चला। चलना तो इसे १२ बजे था; परन्तु मज़दूरों की हड़ताल के कारण इतनी देर से चला।

यह जहाज़ जैसा कि इसके चित्र से प्रकट है वजन में १५,५०० टन है, इसकी लम्बाई ५७५ फ़ीट है और चौड़ाई ६५ फीट है। इसमें काम करने वालों की संख्या ३५० है और एक सहस्र के करीब यात्रीगण हैं।

इसमें दो श्रेणियाँ हैं। एक प्रथम श्रेणी है और दूसरी यात्री श्रेणी है। प्रथम श्रेणी के यात्रियों को अलग-अलग कमरे मिले हुए हैं और यात्री श्रेणी के लोगों के लिए हर तीन यात्रियों के पीछे एक कमरा है। कमरों में बिजली के पंखे लगे हुए हैं, कालीनें हैं और हाथ धोने के बेसन हैं। कमरे बड़े साफ़ सुथरे हैं और रोज़ बिस्तर साफ किये जाते हैं।

खाने का कमरा बहुत बड़ा है। हर एक यात्री की मेज़ और कुरसी अलग है। किसी किसी मेज़ पर चार यात्री भी हैं। दो मेज़ों पर एक बैरा है। मेज़ों पर बड़े अच्छे मेज़पोश हैं। ताज़े फूलों के गुलदस्ते हैं, जो रोज़ बदले जाते हैं। खाना बहुत अच्छा है। मैंने यहां के बड़े खान-

सामा को कल बता दिया था कि मैं मांस नहीं खाता। मेरे लिए अब लोग सब्ज़ियां ही परोसते हैं। खाना ताजा और शुद्ध है। फल भी ताजे और अच्छे हैं। दूध भी बड़ा स्वादिष्ट है। मक्खन-रोटी जितनी चाहो खाओ।

जहाज़ की ऊपर की मंजिल पर जिसे डेक कहते हैं, बहुत सी कुर्सियां पड़ी हैं। इन पर गद्दे भी हैं। अधिक समय यात्री इन कुर्सियों पर काटते हैं। यहीं से अथाह सागर का दृश्य बड़ा भला मालूम देता है। जिधर देखिए, उधर पानी-ही-पानी दृष्टिगोचर होता है। जब जहाज़ पानी को चीरता हुआ चलता है तो पानी की बड़ी बड़ी लहरें बन जाती हैं। यह छवि देखते ही बनती है।

जहाज़ में एक पुस्तकालय भी है। खेलने का कमरा, आराम करने व बैठने के कमरे भी अलग बने हैं। यहाँ नाई और शराब की दुकान भी है। कमरे ऐसे सजे हैं, जैसे किसी राजा का महल हो।

इस जहाज़ में क़रीब २० देशों के निवासी हैं, जिनमें से ३ व्यक्ति भारतीय हैं। एक सरदार जी भी हैं, जो अमेरिका में अब से ३० साल पूर्व पधारे थे और यहाँ ही शादी कर ली है और अमरीकी बन गए हैं। उन्होंने अपने केश साफ करा लिये हैं। कल इनसे विभिन्न विषयों पर करीब एक घण्टे बातचीत हुई।

यहां नित्य प्रति कोई न कोई सिनेमा भी दिखाया जाता है।

१५ जुलाई, १९५०

आज प्रातः मैं ६ बजे उठा। नित्यकर्म से निबटकर फिर सो गया। ८ बजे यहां पर नाश्ता होता है। नाश्ते में चकोतरे का रस, फल और कॉफी पी। यहां नाश्ता क्या है, अच्छा खासा खाना।

नाश्ता करके फिर सो गया और ११ बजे उठा। एक घण्टा ऊपर डेक पर धूप में जा बैठा और समुद्र की लहरें देखने लगा। १२ बजे

खाना खाया । खाने में मुझे विशेष रूप से सब्जियां परोसी गईं । भोजन के उपरान्त दो सेब खाये और एक गिलास दूध पिया । ३ बजे एक फ़िल्म दिखाई गई ।

अब शाम के ५ बजे हैं । कुछ देर तक डेक पर बैठूँगा और फिर ६ बजे भोजन खाना है । भोजन के उपरान्त डेक पर सो जाऊँगा । यहाँ का मौसम अब काफी ठंडा है । बिना कोट पहिने बाहर नहीं जाया जाता । ऋतु-पवन बड़ी शीतल और सुगन्धित है । सितारे बड़े भले मालूम देते हैं, जैसे श्वेत बेले की कली बिखेर दी हों ।

१६ जुलाई, १६५०

आज इतवार है । सुबह ७॥ बजे उठा था । आध घंटे में निवृत्त होकर ८ बजे नाश्ते पर चला गया । नाश्ते से पेट भर गया ।

तत्पश्चात् मैं पुस्तकालय में आ गया और एक भारतीय भाई से कुछ देर बातचीत होती रही । फिर यहाँ कैथोलिकों और प्रोटेस्टैण्ट लोगों की अलग-अलग प्रार्थनाएं हुईं । मैंने दोनों में भाग लिया । जब प्रार्थनाएं समाप्त हुईं तो एक बूढ़ी औरत मेरी तरफ आई और कहने लगी कि क्या आप भारतीय हैं ? मैंने कहा हाँ ! उसने पूछा कि क्या मैं महरबाबा को जानता हूँ ? मैंने उत्तर दिया कि नाम तो अवश्य सुना है मगर उनके दर्शन प्राप्त करने का सुअवसर नहीं मिला । उस औरत ने मुझे बताया कि वह एक अमेरिकन महिला है और महरबाबा की भक्त है । उसने मुझे यह भी बताया कि अगले साल वह महरबाबा को अमेरिका बुलाने की सोच रहे हैं ।

इस प्रकार ११ बज गये । फिर मैंने सोचा कि सिर के बाल कटाए जायँ । मैं नाई की दुकान पर गया और उसने करीब २० मिनट में मेरे मनपसन्द बाल बना दिए । उसकी फ़ीस ३५ सेण्ट थी और टिप १० सेण्ट । टिप का हमारे यहाँ प्रचलन नहीं । यहाँ सभी जगह

टिप दिया जाता है। बाल कटाकर सिर धोया। इतने में ही १२ बज गये और भोजन की घण्टी बज उठी।

किसी ने पुकारा 'अब जरा खाना खा लीजिए।' आपने अगर किसी अँग्रेज़ी होटल में खाना खाया होता तो इस विवरण को अच्छी तरह समझ सकते। मेज़ पर काँटे-छुरियों का ढेर लगा है। तीन प्रकार की छुरियाँ और तीन प्रकार के काँटे।

तीन तरह की चम्मचें परोसने वाला लड़का करीब सात बार तश्तरियाँ बदलता है। एक चीज़ समाप्त होने पर दूसरी चीज़ लाता है। इस तरह खाने में १ घंटा लग जाता है। मेरे लिए इस बेचारे को कुछ सब्ज़ियाँ लानी पड़ती हैं। परोसने वाला मालूम पड़ता है २० साल से कम उम्र का है।

खाना इतना परोसा जाता है कि उसे निबटाना एक मुसीबत हो जाती है। मैं तो, फलों, फलों के रस, दूध, मक्खन और आइसक्रीम पर अधिक हाथ साफ़ करता हूँ। आज खाना खाने के बाद मैंने अपने अन्य साथियों से पूछा कि दुनिया में कितने आदमियों को पूरा पेट भर कर खाना मिलता है। उन बेचारों को कुछ भी ज्ञान न था। वह अमेरिका से आये थे जहाँ अधिक भोजन समुद्र में नष्ट कर दिया जाता है। तब मैंने बताया कि इस संसार में ७५ प्रतिशत व्यक्तियों को दो समय खाना ठीक ढंग से प्राप्त नहीं होता,विशेषकर एशिया के शोषित निवासियों को।

अब ज़रा मेरी मेज़ पर बैठे लोगों का हाल सुनिए। यह एक पूरा परिवार है। दो पति-पत्नी हैं। ३० साल बाद अपने देश जर्मनी जा रहे हैं। इनके तीन लड़के और एक लड़की है। लड़के युवा हैं और लड़की ९ साल की है। बड़े भले आदमी है। आज उन्होंने शराब भी पी। मुझ से भी कहा। मैंने कहा इसका स्वाद मैं नहीं जानता। सिगरेट के लिए भी आग्रह करते हैं। यह लोग मुझे देखकर आश्चर्य में हैं। मेरे खाने

को देखकर कहते हैं "तुम कैसे रहते हो।" मैंने कहा जैसे मैं आपके साथ तीन दिन से रह रहा हूँ। इसी तरह जीवन के करीब २६ साल बिता दिए हैं।

ख़ैर, यह लोग इन बातों की महत्ता नहीं जानते। ये पूरे भौतिक और रसवादी हैं। इनकी संस्कृति हमसे बिल्कुल भिन्न है।

खाना खाकर फिर मैं ऊपर डेक पर आया। आज का दिन बड़ा अच्छा था। आराम कुर्सी पर धूप सेवन करने लगा। तीन बजे एक सिनेमा दिखाये जाने का कार्यक्रम था वहाँ चला गया। सिनेमा ५ बजे समाप्त हुआ।

फिर मैंने सोचा कि ज़रा अपने आगे के रास्ते के बारे में ठीक कर लूँ। मुझे सन्देह मिटाना था कि साउथैम्पटन (लंदन) से मुझे कब जाना था। वैसे तो मुझे चलने से पूर्व फोन पर ज्ञात हो गया था कि २८ जुलाई को कैन्टन जहाज़ से साउथैम्पटन बन्दर से बम्बई जाना है। परन्तु मैं ठीक ठीक पता करना चाहता था इसलिए मैंने लंदन की पी० एण्ड ओ० कम्पनी को जवाबी रेडियोग्राम भेजा है। उसके इन्तज़ार में हूँ। अगर मुझे २८ तारीख को साउथैम्पटन से चलना है तो यहाँ से सीधा पहले पेरिस जाऊँगा। वहाँ २५ को रहकर समीपस्थ देश स्विट-ज़रलैंड को देखता आऊँगा। २६ तारीख को लंदन आ जाऊँगा। लंदन में २६, २७ और २८ को रहकर २८ को ही कैन्टन से बम्बई को चल पडूँगा।

अब रात के नौ बजे हैं। मैं जहाज़ के आराम कमरे में बैठा हूँ। क़रीब क़रीब सभी मुसाफ़िर ताश खेल रहे हैं। कुछ बातचीत कर रहे हैं। ये अधिकतर बड़े लोग हैं। कुछ लोग बीयर और शराब भी पी रहे हैं।

अब से आध घंटे बाद खाने के कमरे में संगीत-कार्यक्रम होगा

यानी गवैये सितार और अँग्रेजी क़िस्म के बाजे बजायेंगे। मैं भी सुनने जाऊँगा।

मुझे ख़याल था कि पहिले की तरह मुझे 'सी सिकनैस' होगी परन्तु यह मालूम ही नहीं होता कि मैं जहाज़ पर सफ़र कर रहा हूँ। जहाज़ बड़ी अच्छी गति से चल रहा है। १५ मील फी घंटा चलता है। यह सुनकर आपको आश्चर्य होगा कि जहाज़ों की रफ्तार १५ से २० मील प्रतिघंटा होती है।

अब मैं कमरे के बाहर आरामकुर्सी पर बैठा हूँ। आसमान पर हँसिया जैसा चाँद लटका हुआ है। हालाँकि अब रात के ९॥ बजे हैं; परन्तु अब भी थोड़ी-सी लालिमा दिखाई दे रही है। समुद्र में लहरें बल खाती हैं। जहाज़ उनको चीरता हुआ लंदन की ओर बढ़ रहा है।

१७ जुलाई, सन् १९५०

आज सुबह ८ बजने में १० मिनट शेष थे तब जगा। जल्दी-जल्दी फारिग होकर नाश्ते पर आया। आज कुछ मैं भूखा नहीं था। तब भी मैंने दो संतरे के रस के गिलास लिये, एक गिलास दूध, साथ-साथ डबल रोटी और कॉफी पी। परोसने वाला मेरे लिए दो सेब भी ले आया था। उनको भी खाया। इतना सोया था मगर न जाने नींद इतने पर भी क्यों न भरी थी। कल रात देर से सोया था शायद इसीलिए देर तक सोता रहा और सुबह तक नींद न पूरी हुई।

जब १२ बजने में २० मिनट थे तब कमरे में साफ़ करने वाला आया और मुझे जगाया कि खाने का समय होने वाला है। मैं आँखें मलता हुआ बैठ गया और कपड़े पहिनकर ऊपर आया। अभी १२ बजने में ८ मिनट शेष थे। अतः मैं डेक पर हवा खाने चला गया। इतने में ही घंटी बज गई।

बकिंघम महल
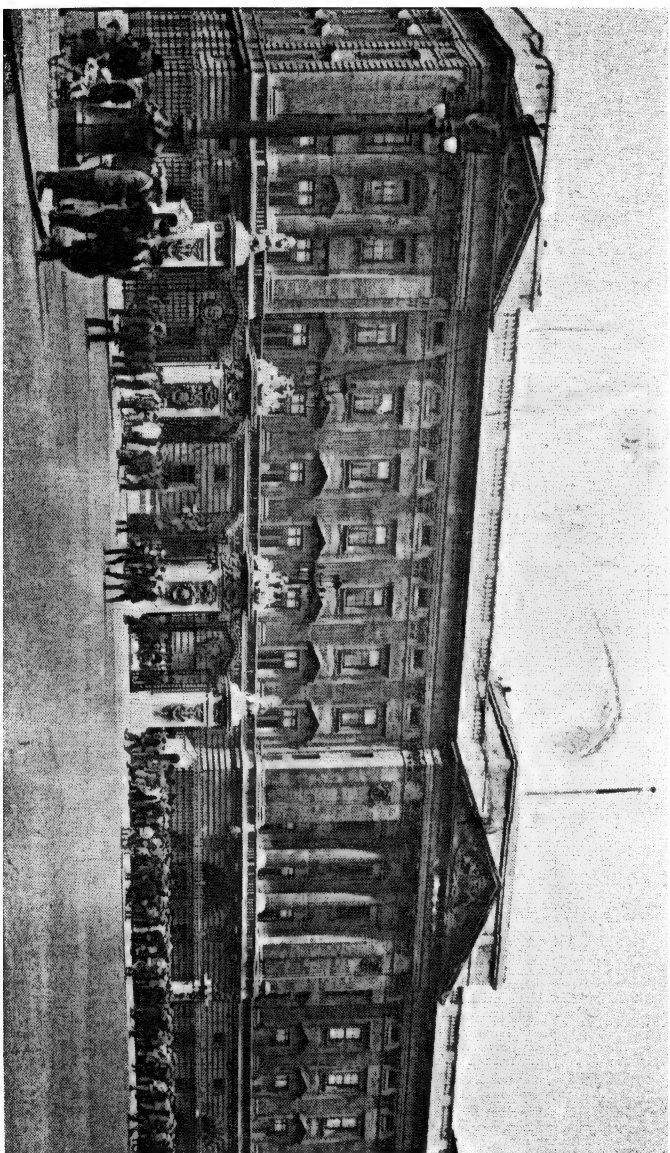
खाना ग्राज भी उसी तरह रोचक ग्रौर पर्याप्त था। मेरे लिए वह विशेष सब्ज़ियाँ लाया था। दो सेबों को काटकर खाया ग्रौर पेट भर गया।

ग्राज का दिन भी कल की तरह ग्रच्छा था। धूप काफ़ी कड़ी थी। मैं ग्रपनी ग्राराम कुर्सी पर ग्रा बैठा। फिर जब धूप बहुत लगने लगी तो समुद्र की लहरें देखने लगा ग्रौर इसी तरह ३ बज गये। ३ बजे ग्राज फिर एक सिनेमा दिखाया गया, जो बड़ा हास्य विनोदपूर्ण था। चित्र का नाम था 'दी गुड ह्यूमर मैन'। यह सिनेमा सायं ४॥ बजे समाप्त हुग्रा। फिर मैं ग्रपनी कुर्सी पर ग्रा बैठा। वहाँ एक वृद्धा स्त्री बैठी थी। वह हालैण्ड से ग्राई थी। उससे बातचीत होने लगी। इण्डो-नेशिया पर भी बात ग्रा गई। ग्राप जानते हैं कि इण्डोनेशिया हालैण्ड के उसी तरह मातहत था जैसे भारत इंगलैण्ड के। ज़रूरी बात थी कि उसने इण्डोनेशिया का कसूर बताया। पंडितजी के बारे में उसने कहा कि "मैं उनको पसन्द नहीं करती।"

ग्रापको याद होगा कि पंडितजी ने इण्डोनेशिया के बारे में एक सभा भारत में बुलाई थी। इसी तरह की बहुत-सी बातें होती रहीं कि इतने में खाने की घण्टी बज उठी ग्रौर हमारी बातों का तारतम्य टूट गया। मैं भोजन करने चला गया ग्रौर उसी प्रकार फलाहार करके लौटा।

परसों मैंने यहां के नायब इन्जीनियर को ग्रपना मित्र बना लिया था। ग्राज मैं उससे फिर मिला। मैंने पूछा कि मैं जानना चाहता हूँ कि जहाज़ कैसे चल रहा है। कल उसने दोपहर का समय दिया है। मैं कल उससे मिलूगा ग्रौर वह मुझे जहाज़ की सारी मशीनरी दिखायेगा। यह मेरा पहला मौका होगा कि जहाज़ की मशनरी देखूं। ग्राज सायं फिर सिनेमा दिखाया जायेगा। फिर शयन करने चला जाऊँगा।

१८ जुलाई, १९५०

आज प्रातः ७ बजे जगा। ८ बजे अन्य दैनिक कार्यों से निबटकर नाश्ता किया। नाश्ते के पश्चात् सो गया और १२ बजे तक आराम करता रहा। आज दोपहर को उपवास किया। क्योंकि मैं पाचन-क्रिया को कुछ आराम देना चाहता था। फलतः सायंकाल खूब जोर से भूख लगी। तथा मन भर कर खाना खाया। खाना भी मेरी रुचि का था। तले हुए आलू और पालक का साग भी था। फल और आइसक्रीम तो नित्य मिलती थी।

आज दोपहर को एक बजे जहाज़ की मशीनरी देखने गया। बड़ी भारी थी। यह जहाज़ भाप से चलता है। भाप तेल से बनाई जाती है। बिजली भी जहाज़ में ही बनाई जाती है, बर्फ़ भी बनती है जोकि भोजन ठंडा रखने के काम आती है तथा उसे सड़ने नहीं देती। जहाज़ के इन्जीनियर ने क़रीब क़रीब सभी आवश्यक बातें मुझे बताईं।

इस समय तक हम लोग न्यूयार्क से करीब १३०० मील की दूरी पर आ चुके हैं। साउथैम्पटन न्यूयार्क से ३००० मील दूर है। आनेवाले इतवार तक हम इस दूरी को पार कर लेंगे। २४ घण्टे में हमारा जहाज़ क़रीब ३२८ मील चलता है।

आज यहाँ कल से अधिक ठंड है। आज धूप इतनी कड़ी न थी। तब भी हम लोग अपनी-अपनी कुर्सियों पर जमे थे। आज मैं एक वृद्ध अंग्रेज़ दम्पति से मिला, जो मेरे पास कुर्सी पर आकर बैठ गया था। यह बूढ़ा १८९७ में भारत गया हुआ था। जिस साल बंगाल में भूकम्प और अकाल पड़ा वह वहीं था। मैंने अंग्रेजों की पोल खोली। मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा जबकि उसने स्वयं मेरी बात की सराहना की और उसे ठीक बताया। उसने मुझे खुद बताया कि जब १८९७ में कलकत्ते में अकाल पड़ रहा था अंग्रेजी सत्ता भारत से

अनाज बाहर भेज रही थी। फिर हमारी बातचीत यहाँ तक हुई कि भारतीयों ने अंग्रेज़ों को घूस और रिश्वतखोरी सिखाई। उसने यह भी स्वीकार किया कि वह भी घूस लेता था। आजकल यह लोग ब्रिस्टल ईस्ट इण्डीज में रहते हैं। इनके बड़े लड़के की शादी हो गई है, इसलिए यह लोग लंदन में ठहरे हुए हैं और पावस के आमोद-प्रमोद में मग्न हैं।

इस समय क़रीब-क़रीब दिन छिप गया है। रात्रि का अंधेरा धीमे धीमे अपनी काली चादर फैला रहा है। नीला समुद्र भी कालिमामय हो गया है। जहाज़ मन्द मन्द गति से बड़ी मस्ती में चल रहा है।

आज हम लोगों ने पानी के बड़े-बड़े काले जानवर भी देखे। इन जानवरों को शार्क कहते हैं। इसके अतिरिक्त हिमसंचरणशील पर्वत भी दिखाई दिये। आज शाम को ६।। बजे खेल दिखाया जायगा। भोजन के समय बड़ा मधुर साज बजाया गया।

१६ जुलाई, १६५०

आज प्रातः ७ बजे जगा। मेरे कमरे में एक अंग्रेज़ हैं जो सवेरे उठने के अभ्यस्त हैं। उन्हीं को देखकर समय मालूम कर लेता हूँ और फिर नाश्ते की राह लेता हूँ।

नित्य की भाँति नाश्ता करने के बाद सो गया और १०।।बजे जागा। उठ कर ऊपर हवाखोरी के लिए गया। इतने में बूढ़े सरदार जी जो अब अमेरिकन बन गये हैं ऊपर से झाँक बैठे और नीचे उतरकर अपने बचपन की मधुर स्मृतियाँ सुनाने लगे। उन्होंने बड़े रोचक ढंग से बताया कि वह अमेरिका किन-किन कठिनाइयों को झेलते हुए आये और किस प्रकार कमाना आरम्भ किया। परन्तु वह अमेरिकन क्यों बने, यह बात मुझे पसन्द नहीं आई। तब भी उनका होना या न होना भारत के लिए बराबर ही है।

भोजन के पश्चात् ऊपर आ गया और समुद्र की लहरें गिनने लगा

इतने में ही तीन बज गये। फिर फ़िल्म देखने चला गया। इस चित्र का नाम था—"एडवैन्चर्स ऑफ कैप्टन गुड"। यह चित्र मारधाड़ से भरपूर था। फिर ऊपर आया और समाचारपत्र पढ़े।

अभी तक मैंने यह नहीं बताया कि जहाज़ में समाचारपत्र भी प्रकाशित होते हैं। हर रोज आठ पृष्ठ का जहाज के समाचारपत्र कार्यालय से एक समाचारपत्र निकलता है, जो करीब करीब सभी यात्रियों को प्रदान किया जाता है। जहाज़ के अखबारी दफ्तर में बेतार का तार, रेडियो और टेलीप्रिन्टर है। रूस और अमेरिका के साथ भारत का जो संधि वार्तालाप चल रहा है उसकी खबरें भी छपती हैं। इससे स्पष्ट प्रकट है कि हम समुद्र की गोद में होते हुए भी सभ्य संसार से अलग नहीं हैं।

शाम का भोजन भी मज़ेदार रहा। फल व आइसक्रीम भी मिली। समुद्र अभी तक गहन गंभीरता लिये हुए है। किसी प्रकार का झंझावात नहीं। आधी मंजिल तो कट गई और आधी अभी शेष है।

२०, जुलाई १६५०

आज भी क़रीब-क़रीब उसी समय उठ गया था। उसी प्रकार दिन कट गया। परन्तु अभी तक लंदन से उस जवाबी तार का उत्तर नहीं मिला जो मैंने यह जानने के लिए भेजा था कि मेरा यात्रा कार्यक्रम २८ दिनाङ्क को साउथैम्पटन (लंदन) से चलने का पक्का हो गया या नहीं। कल और इन्तज़ार कर रहा हूँ। अन्यथा जहाज से साउथैम्पटन पर ही उतर पड़ूँगा और फ्राँस और स्विटजरलैंड की पुरोगम निश्चित करूंगा। आज और कोई नई बात नहीं हुई। वही खाना, वही लोगों से बातचीत, फिल्म, हँसी में डूबे चेहरे और समुद्र की लहरें।

शुक्रवार
२१ जुलाई, १६५०

आज प्रातः ७।। बजे उठा, फिर नाश्ते के बाद सो गया। आज मैं कम सोया। १०।। बजे डेक पर चला गया और लोगों से बातचीत करता रहा। दोपहर का भोजन किया, तीन बजे फिल्म देखा।

सायं भोजन के उपरान्त पुस्तकालय में आया और यात्रियों से विभिन्न विषयों पर वार्त्तालाप हुए।

आज मैंने पुस्तकालय से एक पुस्तक लेकर पढ़ना शुरू की है। पुस्तक है 'चार्ल्स डिकन्स'—१८१२ से १८७० तक। इंगलैण्ड के पोप हैनरी चार्ल्स डिकन्स जो एक बड़े उपन्यासकार थे, उनकी यह जीवनी है। डिकन्स को मैंने कालिज के दिनों में भी पढ़ा था। मुझे यह लेखक बहुत ही पसन्द है। इसने अपने उपन्यासों में शोषित-वर्ग के मार्मिक चित्र अंकित किये हैं।

शनिवार
२२ जुलाई, १६५०

आज नाश्ते के बाद पुस्तकालय में आगया और वहीं पुस्तकें पढ़ते पढ़ते सारा दिन व्यतीत हो गया। आज सर्दी के कारण डेक पर बहुत कम आना जाना हुआ। हाँ, सुबह भ्रमण के लिए अवश्य गया था। मैंने कल वाली पुस्तक का अधिकतर भाग समाप्त कर लिया है, कल तक इसे पूरा पढ़ लूँगा।

आज मन में नवीन उत्साह की हिलोरें उठ रही हैं। इसका सबसे बड़ा कारण है कि हम लन्दन के निकट पहुँच रहे हैं। हमें पूर्ण आशा है कि सोमवार के सवेरे ५ बजे साउथैम्पटन पहुँच जायेंगे फिर नौ बजे की रेल से ११ बजे लन्दन पहुँचूँगा। जहाज़के सारे यात्री अपने निर्दिष्ट स्थान पर पहुँचने के लिए तरह-तरह के फॉर्म भर रहे हैं। जो लोग लन्दन जा

रहे हैं उन्हें भरने की ज़रूरत नहीं पड़ती, क्योंकि भारत अभी तक कॉमनवैल्थ में है। मुझे वीसा की भी इसलिए आवश्यकता नहीं। हाँ, फ्राँस और स्विटजरलैण्ड जाने के लिए वीसा की आवश्यकता होगी जिन्हें मैंने वाशिंगटन में ही प्राप्त कर लिया था।

अब मैं पुस्तकालय में बैठा हूँ। जहाज़ अपनी उसी रफ्तार से समुद्र की लहरों को चीरता हुआ आगे बढ़ रहा है। मैं चाहता था कि इन दृश्यों की तस्वीर लूँ, परन्तु अभी तक नहीं ले सका। अगर कल धूप निकली तो अवश्य फोटो लूँगा।

इतवार
२३ जुलाई, १९५०

आज सभी यात्री जोश में थे, खुश थे और उनके चेहरों पर उत्साह की रेखाएँ थीं। दिन भी समशीतोष्ण था। यात्रियों की मंजिल निकट आ रही थी। दिन के क़रीब २ बजे पूरे नौ दिन चलने के बाद कुछ ज़मीन दिखाई दी। कुछ और जहाज़ दिखाई दिये। संसार का सबसे बड़ा और अच्छा जहाज़ 'क्वीन मैरी' भी देखने को मिला। वह लंदन से न्यूयार्क जा रहा था। इस जहाज़ की गति अन्य जहाजों से अधिक है। यह क़रीब ३० मील प्रति घण्टा चलता है और लन्दन से न्यूयार्क ५ दिन में पहुँच जाता है। शेष जहाज़ ८ या ९ दिन में पहुँचते हैं।

जब से मैं जहाज़ पर चढ़ा हूँ, एक भी तस्वीर नही ली है। आज मैंने काफी तस्वीरें ली हैं। स्मृति के लिए मैं उन्हें लाऊँगा।

सायं सभी यात्रियों को विदाई भोज दिया गया। रात के १० बजे से फर्माइशी खाने होंगे। जो यात्री साउथैम्पटन उतर रहे हैं, उनका सामान ठीक कर दिया गया है। कल प्रातः ५ बजे हम साउथैम्पटन पहुँचेंगे। हमें एक बड़ी किश्ती समुद्र में लेने आयेगी और वह रेल तक पहुँचा देगी।

२४ जुलाई, १६५०

आज हम लोग सवेरे लगभग ७।। बजे साउथैम्पटन पहुँच गये। फिर गाड़ी से लन्दन आये। यह सायंकाल तय करूंगा कि भारत कब आऊँगा। ज्ञात होते ही आपकी सेवा में पत्र भेजूँगा।

लन्दन

सायंकाल २४ जुलाई, १६५०

दोपहर को आपकी सेवा में न्यूयार्क से साउथैम्पटन तक के सफर का विवरण भेज चुका हूँ। आज साँझ को यह भी तय कर लिया है कि दिनाङ्क २८ को कैन्टन नामक जहाज से साउथैम्पटन से सायं ५ बजे प्रस्थान करूँगा और बम्बई १३ अगस्त को पहुँचूंगा। अब मैं पेरिस जाने वाली रेल की प्रतीक्षा कर रहा हूँ। पेरिस से स्विटजरलैण्ड भी जाऊँगा और फिर लन्दन वापिस आ जाऊँगा।

लन्दन मुझे अच्छा नहीं लगा। अमेरिका के विशाल नगरों के आगे संसार के सब शहर गाँव से प्रतीत होते हैं। यहाँ की रेल, मकान खान-पान सब पुराने ढंग का है। किसी-किसी चीज़ पर राशन है। परन्तु अमेरिका में इतना खाने को है कि चीज़ें समुद्र में नष्ट कर देनी पड़ती हैं। पेरिस से भी आपकी सेवा में पत्र लिखूँगा।

बम्बई आने का आपने निश्चय किया होगा? मेरी राय है कि आप में से कोई आना ही चाहते हैं तो आ जायं। यहाँ मैं रज्जो और छोटे इत्यादि से मिल ही लूँगा। माताजी बम्बई आने का कष्ट न करें क्योंकि व्यर्थ पैसा उठता है। आगे आप सोच लें। शेष पेरिस पहुँचने पर लिखूँगा। माताजी जैहिन्द।

लन्दन

२८ जुलाई, १६५०

आज मेरा लन्दन में आखिरी दिन था। 'इण्डियन वाई. एम. सी. ए.'

में ठहरा हुआ था। यह एक भारतीय डाक्टर मलाइपरमन के अधिकार में चलता है। दूसरे अर्थों में यह भारतीय विद्यार्थियों के लिए होटल है। यह 'वाई. एम. सी. ए.' दो विभिन्न भवनों में बॅटा हुआ है। जिस इमारत में मैं ठहरा हुआ हूँ, वह पहली से छोटी है। इसमें क़रीब १५ विद्यार्थी रहते हैं। मैं जिस कमरे में ठहरा हुआ हूँ उसमें चार भारतीय विद्यार्थी और हैं। इसमें स्नान के लिए कोई प्रबन्ध नहीं। पाखाने पेशाब और हाथ मुँह धोने का बेसन भी पुरानी चाल का है। गरम पानी का इन्तजाम भी अमेरिका जैसा नहीं। दूसरे शब्दों में यहाँ सबकुछ काम चलाऊ मामला था। खाने और नाश्ते के लिए दूसरी इमारत में जाना पड़ता था। वैसे यह मकान सर्वाधिक सस्ता था। मुझे तो केवल दो रातें ही काटनी थीं।

सुबह नौ बजे मै रीगल होटल गया। दो वर्ष पूर्व एक मित्र यहाँ क़मीजें छोड़ गये थे, उन्हें लेना था। इसके पश्चात् कमरे पर आकर सामान ठीक किया और तीन पत्र लिखे। सामान बाहर रखकर कमरा खाली किया और चाबियां कार्यालय में जमा करा दीं। कार्यालय से मुझे १० शिलिंग मिल गये जिन्हें पहले मैंने ज़मानत के तौर पर जमा किया था। इसके बाद मैं श्री पामर से मिला जो ब्रिटिश लायब्रेरी-ऐसोसिएशन के एक बड़े कार्यकर्त्ता थे। फिर टैक्सी से पी. एण्ड ओ. कम्पनी आगया और जहाज़ के बारे में निश्चय किया। आवश्यक बातों से निबटकर और चुंगी आदि चुका कर सायंकाल ठीक ५ बजे जहाज़ से प्रयाण किया। इस अवसर पर कुछ चित्र भी खींचे। इस जहाज़ का नाम कैण्टन है और पी. एण्ड ओ. कम्पनी इसकी मालिक है।

इस जहाज़ का वज़न क़रीब १६०३३ टन है और करीब २५०० यात्री हैं। यह साउथैम्पटन से हाँगकाँग को चलने वाला है। अधिकतर यात्री भारत, श्रीलंका तथा हाँगकाँग के हैं। इसमें प्रबन्ध ढीला है,

खाना भी रुचिकर नहीं। परोसने वाले अंग्रेज़ों की जी हुजूरी करने वाले हैं। मक्खन देखने को नहीं मिलता, क्योंकि इस पर राशन है। कल से आशा है शाकाहारियों के लिए कुछ अलग खाने-पीने का प्रबन्ध हो जाय।

अब रात के १० बजे हैं। आज की भाग-दौड़ में काफ़ी थक गया था। अब शयन करूँगा। इस समय आरामकक्ष में बैठा हूँ। कुछ लोग ताश खेलने में मस्त हैं। कुछ गप्पें हांक रहे थे। इसी कमरे में पुस्त-कालय है। कुछ किताबें पढ़ने की सोच रहा हूँ। अब तो कल ही पढ़ सकूँगा। अच्छा, जैहिन्द।

लंदन से बम्बई

लन्दन से भारत की ओर
(महासागर)
२६ जुलाई, १६५०

इंगलैण्ड से भारत चलने का यह पहला दिन था। आजकल मैं प्रातः ६ बजे नाश्ता करता हूँ। दोपहर का खाना १॥ बजे खाता हूँ और सायंकाल को भोजन लगभग ८ बजे खाता हूँ। पहले जहाज़ की तरह अच्छा और पौष्टिक भोजन तो नहीं मिलता।

सारा दिन पुस्तकालय में किताब पढ़ते और अन्य यात्रियों से बात-चीत करते निकल गया। सायंकाल एक सिनेमा देखा। यह एक अमेरिकन फिल्म थी, जिसका नाम था—'डांसिंग इन दी डार्क।' मैं इसे पहले भी देख चुका था।

अब रात के ११ बजे हैं। मैं ऊपरी मंजिल में आराम कमरे में बैठा हूँ। चाँद की श्वेत किरणें समुद्र में बिखर गई हैं। मौसम बड़ा सुहावना है।

३० जुलाई, १६५०

आज का मौसम कल से बहुत अच्छा था। ज्यों-ज्यों हम लोग बढ़ते जा रहे हैं, जलवायु में भी अन्तर होता जा रहा हैं। आज हमने पोर्तुगाल की सीमा देखी। ज्ञात होता है इस समुद्र में काफी जहाज़-रानी होती है। समुद्र अभी शान्त है मगर ऐसे लक्षण हैं कि नहर स्वेज के बाद सागर तूफानी हो जायेगा।

आजकल मैं क़रीब ८।। बजे उठ जाता हूँ। स्टेवर्ड प्रातः ८। बजे 'बैड-टी' रख जाता है और साथ में संतरा भी लाता है। बिस्तर से उठने पर पहला काम चाय पीना है। उसके पश्चात् शेव बनाता हूँ और हाथ-मुँह धोकर शौचालय जाता हूँ। नाश्ता लगभग ९।। बजे करता हूँ। नाश्ते के बाद किताब लेकर ऊपर धूप में पढ़ता हूँ। जब धूप असह्य हो जाती है तो आराम कमरे में चला आता हूँ।

इस जहाज़ में यात्रियों का स्वभाव भिन्न है। इसमें बहुत-से अंग्रेज़ हैं, जो या तो कोलम्बो जा रहे हैं अथवा हाँगकाँग या सिंगापुर। ये व्यापारी वृत्ति के आदमी हैं। आपको मालूम होगा कि हमने इङ्गलैण्ड से व्यापार बन्द कर दिया है। भारत और इङ्गलैण्ड का व्यापार नहीं के बराबर है। बहुत से लोग रुष्ट भी हैं, मैं उन्हें समझाने का प्रयत्न करता हूँ। उनमें से कुछ यात्री मान भी लेते हैं, कुछ तटस्थ रहते हैं। उनका विचार है कि भारत इस प्रकार अच्छा नहीं कर रहा। वे यह दावा करते हैं कि भारत को अंग्रेज़ों ने अपनी इच्छा से स्वतन्त्रता दी है। शायद वे हमारे राष्ट्रीय आन्दोलन और भारतीय जनता की अभूत-पूर्व राजनीतिक चेतना को भूल जाते हैं।

मैं कभी-कभी खेलों में भी भाग लेता हूँ। किन्तु मेरी उनमें अधिक दिलचस्पी नहीं है।

इस जहाज़ में बच्चों के लिए एक अलग कमरा है। इस कमरे में बहुत से खिलौने हैं और एक नर्स भी है। सुबह नाश्ता कराके माताएँ अपने बच्चों को इस कमरे में छोड़ जाती हैं। यह नर्स इन बच्चों की देखभाल रखती है। कमरे का मुख्य द्वार सीखचों के दरवाजे से बन्द हो जाता है। आज मैं इस कमरे के द्वार के आगे खड़ा रहा और काफ़ी देर तक बच्चों को खेलता हुआ देखता रहा। इनमें शिशु भी हैं। उनका खेलना बड़ा प्रिय लगा।

मुझे इस जहाज़ में करीब-करीब भारतीय ढंग का भोजन मिला। खूब पेट भरकर खाता हूँ, ग्राम की चटनी भी मिलती है। किन्तु यहाँ दूध, दही नहीं मिलता। क्योंकि दूध पर इँगलैण्ड में राशन है।

अभी तक तो जहाज अच्छी तरह से चल रहा है।

३१ जुलाई, १६५०

ज्यों-ज्यों हमारा जहाज़ भारत की ओर बढ़ता रहा गर्मी अधिक होती गई। साँझ का मौसम बड़ा सुहावना हो जाता है। मेरे पुराने साथी जो कभी सैंट स्टीफन्स कालेज, दिल्ली में साथ पढ़ते थे, अंग्रेज़ी गानों के रिकार्ड साथ लाये थे। उन्होंने ऊपर की मंज़िल में कई गाने सुनवाये। चाँद भी गगन-मंडल में बढ़ता गया, जैसे कि वह भी गीत सुनना चाहता हो। हवा शीतल-मंद-सुगन्ध भरी थी। यह पुरोगम रात के ११ बजे तक चलता रहा।

आज आसमान पर सुबह से ही धुँधलका और कुहरा छाया हुआ था। जहाज़ की चाल भी मध्यम पड़ गई और बार-बार सीटियाँ देने लगा ताकि कोई दूसरा जहाज़ उसी पथ से न आ जाय। धुँध दोपहर तक अपना साम्राज्य जमाये रही। अन्ततः आकाश स्वच्छ हो गया और धूप निकल आई; जैसे किसी लजीली गोरी ने चादर में से झाँका हो। पथ में जिब्राल्टर भी आया, लेकिन धुँध के कारण कुछ दिखाई नहीं दिया।

आज वाद-विवाद भी काफी हुए। मैंने तर्कों से लोगों को अपनी ओर कर लिया। एक अंग्रेज़ यात्री महोदय जिनसे कल आधी बहस हुई थी कहने लगे कि आपकी आँखें ही कुछ अजीब हैं जो दिल में गड़ जाती हैं। अंग्रेज़ी में इन आँखों को 'पीयरसिंग आईज़' कहते हैं। वह यह भी कहने लगे कि तुम आधी बाजी तो अपनी आँखों की वजह से जीत लेते हो। मैं नहीं कह सकता कि यह कहाँ तक ठीक है; परन्तु

आँखों के बारे में कई आदमियों की क़रीब-क़रीब यही राय है।

मेरे कमरे में एक सरदार जी भी हैं। नाम है—एस. डी. सिंह। यह इन्जीनियर हैं और बड़े खुशदिल हैं।

१, अगस्त १९५०

आज सारे दिन गर्मी रही; किन्तु रात का मौसम अच्छा हो गया। करीब ९॥ बजे चाँद भी निकल आया और जगमगाने लगा। मैं जहाज़ की एक तरफ कुर्सी पर बैठकर चाँद का बढ़ना देखता रहा। ठंडी किरणें समुद्र पर बिखर गईं। काश! मैं एक अच्छा कवि होता। जी चाहा कि एक दो चित्र ले लूँ। अन्त में अपने केबिन में आया और कैमरे से चित्र लिये। शायद तस्वीर अच्छी आई हो। क्योंकि जहाज़ हिल रहा था, इसलिए मुझे शक है कि कुछ भी चित्र न खिंचा हो। इस तरह १२ बजे मैं बिस्तर पर आकर लेटने का उपक्रम करने लगा। साथियों ने पूछा शराब क्यों नहीं पीते हो? इस विषय पर मैंने उनके समक्ष उदाहरण देते हुए न पीने के कारण बताये और वे कुछ प्रभावित से नज़र आये।

जहाज़ में पदार्पण करने के बाद पहली बार मैं नहाया। यहाँ नहाने के लिए दो तरह का पानी है। एक समुद्री जल जो नमकीन होता है। दूसरा मीठा पानी होता है। टब में ठंडा और गर्म पानी करके कुछ देर तक लेटे रहते हैं, फिर नमकीन पानी को साफ करने के लिए मीठे जल से स्नान करते हैं।

हमारा जहाज़ ५ तारीख को पोर्ट सईद पहुँच रहा है। वहाँ आशा है कुछ घण्टे ठहरूँ। अगर मौसम ठीक रहा तो कुछ चित्र भी खींचूँगा।

मौसम गर्म है। मन भी नहीं लगता। सफ़र काफी लम्बा है। धीरे-धीरे सब दिन बीतते जायेंगे और मंज़िल पास आती जायेगी। हर क्षण आशामय होता है।

२ अगस्त, १९५०

आज का दिन भी ऐसे ही पढ़ते-लिखते, बातें करते और समुद्र की लहरों को ही देखते बीत गया। आज हमने 'माल्टा' नामक एक बड़ा टापू देखा। यह अंग्रेज़ों के अधिकार में है। युद्धकाल में जर्मनी ने इस पर बम बरसाये थे। समुद्र में बड़ी-बड़ी मछलियाँ भी देखीं।

रात को खाने के बाद अपने मित्र के पास अंग्रेज़ी गानों के रिकार्ड सुने। फिर शयन के लिए चला गया। मौसम आज भी उष्ण था। परन्तु ज्यों-त्यों कर दिन कट जाता है।

३ अगस्त, १९५०

आज किसी प्रकार की विशेष बात नहीं हुई। गर्मी अधिक पड़ी। दिन मनहूस रहा और ऊबा-ऊबा सा उदासी में डूबता रहा। सारे दिन मैं पुस्तकें पढ़ता रहा। दोपहर भोजनोपरान्त सो भी गया था। सायं-काल चाय पीने के वक्त ही उठा और फिर बैठकर पढ़ने लगा। रात के भोजन के बाद एक फ़िल्म देखी जोकि हँसी से भरपूर थी और अमे-रिकन फिल्म कम्पनी की थी।

ऊपर हवा में कुछ समय बिताया फिर १२ बजे के लगभग सो गया।

४ अगस्त, १९५०

आज भी कोई विशेष घटना नहीं हुई जिसके बारे में वर्णन किया जाय। वही खाना-पीना, वार्त्तालाप, पुस्तक पढ़ना और सागर की उछ-लती लहरों में मन रमा रहा।

पोर्ट सईद (मिश्र)

५, अगस्त १९५०

पूरे ९ दिन चलने के बाद आज जहाज़ रुका। पोर्ट सईद (मिश्र) पर हमारा जहाज़ प्रातः ५।। बजे आया। बिल्कुल किनारे पर तो नहीं

मगर किनारे तक आने जाने के लिए एक रास्ता बना दिया गया था। मैं प्रातः पौने पाँच बजे ही उठ बैठा था। ६।। बजे स्नान आदि से निवृत्त हो चुका था। केबिन के साथी काफी देर से उठे। उनका ख्याल था कि ८।। बजे नाश्ता करने के बाद शहर घूमने जायेंगे। परन्तु हम ७।। बजे कमरे से चलने को तैयार हो चुके थे।

मैं कैमरा और पासपोर्ट लेकर ऊपर डेक पर आया और शहर में जाने के लिए पासपोर्ट पर इजाज़त लेने लगा। पोर्ट सईद में कैमरा ले जाने की आज्ञा नहीं मिली, क्योंकि यह स्वेज नहर का प्रदेश है जहाँ चित्रादि लेने की इजाज़त नहीं। क्योंकि स्वेज नहर एक बड़ी नहर है और लड़ाई के दृष्टिकोण से बहुत रहस्यमयी है, अतः किसी को आज्ञा नहीं कि वह फोटो ले।

पोर्ट सईद पश्चिमी सभ्यता और पूर्वी सभ्यता का मिलन-बिन्दु है या यों कहिये कि यहाँ से पूर्वी सभ्यता का प्रथम परिचय मिलता है।

जहाज़ के बन्दरगाह के अन्दर प्रवेश करते ही दाहिनी ओर स्वेज नहर बनाने वाले इंजीनियर 'फर्डीनंड द लेस्प्स' का बुत है और मिश्र के वर्तमान राजा के पिता फोउद प्रथम के नाम पर रखा गया है। इसी ओर स्वेज़ नहर के दफ्तरों की इमारतें भी हैं। इस बन्दर में बहुत से जहाज़ नज़र आये। क़रीब-क़रीब संसार के सभी देशों के जहाज़ थे। एक जहाज़ भारत का भी था।

पोर्ट सईद की आबादी १२०,००० है। मई से अक्टूबर तक का जलवायु—रात को ठंडक और दिन को गर्मी, नवम्बर से अप्रैल तक थोड़ी ठंड और कभी-कभी वर्षा होती है। परन्तु वर्ष पर्यन्त रात को ठंड पड़ती है।

स्वेज नहर की कहानी

स्वेज़ नहर का उद्‌घाटन १८६९ में हुआ था। इस नहर को अंग्रेज़ों

ने ६६ साल के लिए लीज़ पर लिया हुआ है जो १६६८ में समाप्त होती है।

नहर की लम्बाई १०० मील है। पोर्ट सईद से लेकर इस्माइलिया तक इसकी चौड़ाई २०० फीट है। इस्माइलिया पर यह नहर तिमसाब झील में प्रवेश करती है। इसी स्थान से एक और झील करीब २० मील लम्बी है जो बिटर झील में डेवोरसायर जगह पर मिलती है और इसके बाद यह कुछ तंग हो जाती है और कैबरेट नामी जगह पर 'लिटल बिटर लेक' में दाखिल हो जाती है। 'लिटल बिटर लेक' को छोड़ने पर जहाज़ पोर्ट स्यूजिक में दाखिल होना है जोकि बड़ा सुहावना दृश्य उपस्थित करता है।

मैं अपने दो मित्रों के साथ शहर घूमने गया। शहर क्या था, एक छोटा सा कस्बा था। तरह-तरह की दूकानें थीं, जिनकी हापुड़ (उत्तर प्रदेश) की दूकानों से तुलना की जा सकती है। मार्ग में बहुत-सी चीज़ें बेचने वाले शहद की मक्खियों की तरह चिपट जाते थे। उनसे पीछा छुड़ाना एक समस्या थी।

चमड़े का सामान यहाँ काफी सस्ता बताया जाता है। परन्तु यहाँ लोग ईमानदार नहीं। हमारे पीछे एक बुड्ढा दलाल-सा लग गया। और जब दो चमड़े की चीज़ें खरीद लीं तब पीछा छोड़ा। मित्र ने काफ़ी वस्तुएँ लीं।

मैंने घड़ी अभी तक नहीं खरीदी थी। घड़ी की मुझे काफ़ी ज़रूरत थी। पिताजी वाली घड़ी का फीता बाँधने वाला कुँडा एक साल हुए टूट चुका था। परन्तु घड़ी अभी तक चल रही थी। मैं एक भारतीय घड़ी की दूकान पर गया और एक घड़ी खरीदी। दूकान भी बड़ी थी, आदमी भी अच्छे थे। मैं वास्तव में नुकसान में नहीं रहा। घड़ी अच्छी निकली। एक अंग्रेज़ यात्री ने चुँगी की वजह से कई घड़ियाँ

ईफ़ल टॉवर—पेरिस

बेचीं। एक अमेरिकन घड़ी के उसने ७ डालर माँगे। मुझे उसने ४ डालर में दे दी थी। देखने में तो अच्छी मालूम होती है और अभी तक ठीक चल रही है। परन्तु चार डालर यानी २० रुपये में बुरी नहीं।

कस्बा घूम कर हम ११॥ बजे जहाज़ पर वापिस आ गये। यहाँ कमरे में बड़ी गर्मी थी। सारे दिन मौसम का यही हाल रहा। परन्तु रात में ठंडक थी। कुछ साथियों के संग मैं ऊपर बैठा रहा और हम लोग स्वेज़ नहर देखते रहे। फिर करीब १२ बजे चाँद भी उदित हुआ। बड़ा मनमोहक दृश्य था। इस दृश्य के आगे मुझे कोई भी चीज़ अच्छी नहीं मालूम पड़ती। अमृतभरे चाँद कटोरे की शीतल चाँदनी सचमुच अमृत बिखेर रही थी। पता नहीं ये अणुबम और हाइड्रोजन वालों को ऐसे दृश्य क्यों नहीं दिखाई देते। उन्हें मानव संहार क्यों नज़र आता है? अणुशक्ति को मानव विकास के लिए क्यों नहीं प्रयोग करते।

एक-एक क्षण मुझे घर की ओर खींच रहा था। हृदय उल्लसित था। १२॥ बजे मैं केबिन में सो गया।

अदन की ओर
१० अगस्त, १९५०

५ अगस्त के बाद मैं आज पत्र लिख रहा हूँ। इन पाँच दिनों में गर्मी ने बड़ा परेशान किया। पोर्ट सईद और अदन के बीच उष्णता की अधिकता व्याकुल किए रही। और कोई विशेष बात भी नहीं हुई।

कई दिन की गर्मी के बाद हम कल प्रातः अदन पहुँच गये। यहाँ जहाज़ करीब ६ घण्टे ठहरा।

करीब ८ बजे जहाज़ से उतर कर एक किश्ती में बैठे और समुद्र

पार जाकर टैक्सी से अदन पहुँचे। अदन एक छोटा-सा क़स्बा मालूम देता है और केवल ३ मील है। जहाज़ से किनारे तक जाने के लिए १० आने लगे। और वापिसी में भी उतने ही पैसे लगे। टैक्सी में आने-जाने का किराया कुल आठ रुपये लगे।

अदन साम्राज्ञी विक्टोरिया के राजमुकुट का प्रथम हीरा कहलाता है। इसे ब्रिटिश राज्य में १८३९ में मिलाया गया था और भारत के अधीन १ अप्रैल १९३१ तक रहा था। इसके बाद इसे एक कॉलोनी बना दिया गया। पूर्व में यह सबसे महत्त्वपूर्ण तेल और ईंधन प्रदान करने वाला स्टेशन है। इस कॉलोनी की लम्बाई-चौड़ाई ७५ मील है और लिटल अदन को मिलाकर जनसंख्या ८०,००० है। यहाँ अँग्रेज़, अरब, सोमाली, भारतीय और यहूदी बसते हैं। नवम्बर और मार्च में जलवायु अच्छी रहती है।

अदन का दृश्य ऐसा था जैसे लाल कुएँ या किसी मुस्लिम बस्ती में पहुँच गये हों। यह क़स्बा दो बड़े-बड़े पहाड़ों से घिरा हुआ है। पहाड़ों का रंग गेरुआ है। मैंने यहाँ कई फ़ोटो लिये। यद्यपि जहाज़ १२॥ बजे चलता; परन्तु मैं ६॥ बजे ही वापिस आ गया था।

अदन से चलकर समुद्र ज़रा अच्छा रहा। किन्तु अरब सागर में हाल ज़रा ख़राब हो गया। तूफानी पानी की मोटी-मोटी दीवारों ने जहाज़ को हिलाकर रख दिया। जी मितला रहा था, अतः उठा भी नहीं। नाश्ता भी नहीं किया। क़रीब १॥ बजे फ़ारिग होकर ऊपर आया और जी बहलाने के लिए डेक टैनिस खेलने लगा।

सायं फैन्सी ड्रैस शो और नृत्य का आयोजन था। जहाज़ वाले इसे गेला ईवनिंग कहते हैं।

खाने का कमरा सुसज्जित था। हर एक मेज़ पर अजीब-अजीब टोपियाँ रखी हुई थीं। मेरी मेज़ पर एक तुर्की टोपी रखी हुई थी।

मैंने उसे पहन लिया। मैं जहाज़ की रसोई से गोभी के पत्ते लाया। उनकी टोपी भी बनाई और पत्तों का हार सिर पर लटकाया। मैं चाहता था कि कहीं से काला रंग मिले और उसे शरीर पर मला जाय और फिर साबुन से साफ कर लिया जाय; किन्तु कोशिश करने पर भी न मिल सका। हाँ, कपड़े रँगने का रंग ज़रूर मिला जो पक्का था। इसलिए उसके प्रयोग का ख़याल छोड़ दिया। इसलिए बिना ही रंगों के पत्तों का लिबास पहन लिया। लेकिन मेरे विचार कुछ ज़रूरी चीज़ों की कमी के कारण पूरे न हो सके। मैंने वह सब पहने हुए हार उतार दिये और कपड़े पहिन कर ऊपर आ गया। वहाँ दूसरे यात्रियों को अजब-अजब कपड़ों में देखा। मेरे दो भारतीय मित्र दूल्हा दुल्हिन बने थे। इसी तरह जिसके जो जी में आया बना और जिन्होंने अच्छे और अजीवोगरीब कपड़े पहिने उन्हें इनाम भी मिले।

अब अंग्रेज़ी नृत्य हो रहा है। भारतीय, अंग्रेज़, और अन्य देशों के यात्री नृत्य में मग्न हैं। जो जिस लड़की के साथ नृत्य करना चाहता था सिर्फ कहने की देर होती है। सभी क़रीब-क़रीब शराब पी रहे हैं। मस्ती में झूम-झूम कर क्षणिक जीवन के सुखों में तन्मय हैं। सब ओर रंगीनियाँ हैं, रंगरलियाँ हैं और मैं यह डायरी लिख रहा हूँ।

इन दृश्यों को देखकर कोई अगर भारत और अंग्रेज़ी सभ्यता की तुलना करना चाहे तो उसे यहाँ से कई अच्छे-अच्छे विचार मिलेंगे और अन्तर भी स्पष्ट हो जायेगा। कौन-सी सभ्यता अच्छी है यह तो वास्तव में कहना बहुत कठिन है; परन्तु हर एक सभ्यता में अपने-अपने गुण होते हैं। मुझे अंग्रेज़ी सभ्यता, उसके समाज का ढाँचा और चाल-चलन बिल्कुल भी अच्छा नहीं लगता परन्तु उनके गुण मुझे पसन्द हैं। भारत की सभ्यता की रचना उसके जलवायु और उसकी बहुत सी आवश्यकताओं के अनुसार हुई थी, अंग्रेज़ों की सभ्यता भी उसी तरह

निर्मित हुई। भारत में अंग्रेज़ी सभ्यता अपने पैर नहीं जमा सकी है किन्तु उसके कतिपय गुणों को लोगों ने अपना लिया है। हमारा समाज आज जाति-पाँति, छूत-छात से बर्बाद हो रहा है। हम अंग्रेज़ी सभ्यता से अपनी सभ्यता की इस बीमारी को दूर करने का गुण सीख सकते हैं।

अब रात के बारह बजने को हैं। सोने का समय हो रहा है। शेष फिर लिखूँगा।

१२ अगस्त, १९५०

कल हम लोग बम्बई पहुँच रहे हैं। एक स्वप्न जो आज से चार साल पूर्व देखा था पूरा हुआ। या यों कहिए कि उसे पूर्ण करके आज लौट रहा हूँ। इन तीन वर्षों में मैंने क्या सीखा, उस सीखे हुए पर क्या अमल हुआ यह कहना बहुत कठिन है। इस बीच मुझे हर विचारधारा के लोगों से मिलने का अवसर मिला।

मेरे कुछ साथी शराब पीते थे, माँस खाते थे, विषय भोग करते थे यानी वे पूरे सुखवादी थे। मगर मुझे खुशी है कि मैं उनके विचारों में न आ सका और वे मुझे गलत रास्ते पर न खींच सके। जब मैं उनके रास्ते पर न गया तो कुछ ने मुझे बुरा भला कहा, कुछ ने बेइ-ज्ज़ती भी की और कुछ नाराज़ भी हुए। किन्तु मैं दृढ़ चट्टान की तरह सत्य मार्ग पर अविचल रहा।

आज कैन्टन जहाज़ पर आख़िरी रात है। मुझे यह भी आशा है कि मैं फिर भी उच्च शिक्षा के लिए विदेश जाऊँगा। जहाज़ ठीक चल रहा है। अदन से चलने के बाद समुद्र तूफानी रहा। बहुत से यात्री उल्टियों के शिकार रहे। मेरा केवल एक दिन सोकर उठने के बाद जी मितलाया था। इसके बाद कुछ नहीं हुआ। मौसम में काफ़ी

तब्दीली हो गई थी। सायंकाल काफ़ी सर्दी हो जाती थी। आज मौसम अधिक ठंडा नहीं है। मैं आशा करता हूँ कि बम्बई पहुँचने पर मौसम अधिक गर्म न होगा। मेरे पास सूती कपड़े नहीं हैं। बनने में देर भी लगेगी।

हमारा जहाज़ कल सुबह बम्बई के बन्दरगाह पर पहुँच रहा है। क़रीब ११ बजे तक यात्री एक-एक करके जहाज़ से नीचे उतरेंगे। फिर चुँगी वालों से फ़ारिग़ होना है। तब अपने सम्बन्धियों से भेंट हो सकेगी।

: १५ :

प्रथम विदेश यात्रा से वापिसी

१५ अगस्त, १९५० को जब एस० एस० कैन्टन नामी जहाज़ जिस पर मैं लन्दन से बैठा था, बम्बई बन्दरगाह के क़रीब आया तो उस समय प्रातः के ६ बजे थे। हर ओर कोहरा छाया हुआ था। मुझे अच्छी तरह स्मरण है कि मैं डेक पर खड़ा था और अपलक बन्दरगाह की ओर देख रहा था। ताजमहल होटल की बुर्जियाँ नजर आ रही थीं। 'गेट आफ़ इण्डिया' का दृश्य याद दिला रहा था कि मेरी मातृभूमि आ गई है। जहाज़ के यात्रीगण बड़े उत्साहित प्रतीत होते थे तथा अपना-अपना सामान बाँधकर जहाज़ के अधिकारियों को सौंप रहे थे और थोड़ा हल्का-फुल्का सामान एवं आवश्यक कागज़ात हाथ में लिये डेक पर उमड़ पड़े थे। उनकी दृष्टि बहुत दूर से दिखाई देने वाले बन्दरगाह की उस इमारत पर खड़े हुए अपने मित्रों व सम्बन्धियों की ओर थी जो उनके स्वागत के लिए वहाँ जमा थे। जहाज़ की गति मन्द हो गई थी। और जहाज़ चालक बन्दरगाह के अन्दर जहाज़ को मोड़ रहे थे। यह कार्यवाही लगभग एक घण्टा चली होगी कि मैंने देखा कि जहाज़ बन्दरगाह में प्रविष्ट हो चुका था। यात्रियों के उतरने के लिए दो सीढ़ियाँ लगा दी गई थीं। एक सीढ़ी प्रथम श्रेणी के यात्रियों के लिए, दूसरी भ्रमण श्रेणी के यात्रियों के लिए थी। सीढ़ियों की सजावट में भी अन्तर था। मैं अपना कैमरा लिये हुए डेक पर खड़ा था। मेरी प्यासी आँखें माता-पिता के पुण्यदर्शन के लिए लालायित थीं। भीड़ की वजह से उन्हें ढूँढ निकालना मुश्किल था। एक कठिनाई यह भी थी कि स्वागतकारी हाथों में छतरी, रूमाल और घड़ियाँ हिला रहे थे और अपने परिचितों को खोज निकालने का प्रयास

कर रहे थे। बड़ी देर के बाद मुझे चुंगी की एक खिड़की से झाँकती हुई मेरी माताजी दिखाई दीं और फिर पिताजी भी दिखाई देने लगे। लाला जानकीनाथ भी खड़े थे जिनके यहाँ मेरे माता-पिता ठहरे थे। मैंने कैमरे से कई चित्र लिये जिनमें उनके भी चित्र खिच आये। यात्री उतरते जा रहे थे और जहाज़ में केवल वे ही ठहरे थे जिनके कि सम्बन्धी जहाज़ पर चढ़ने का आज्ञा-पत्र बन्दरगाह-अधिकारियों से प्राप्त कर लाये थे। थोड़ी देर बाद मैं भी नीचे उतरा और चुंगी कार्यालय के विशाल भवन में जा पहुँचा। चुंगी अधिकारियों की उलझन-पूर्ण कार्यवाहियों को देखकर मुझे विचार आया कि पश्चिम देश वाले कितनी योग्यतापूर्ण व्यवस्था करते हैं और किसी भी यात्री को व्यर्थ का कष्ट नहीं उठाना पड़ता।

एक घण्टा पंक्ति में खड़ा रहने पर भी नम्बर न आया जबकि जान पहिचान या प्रलोभन देने वाले व्यक्ति 'क्यू' व्यवस्था की मर्यादा लांघकर अपना काम करा रहे थे।

कभी-कभी मैं लोगों से आग्रह करता कि 'क्यू' में लगिए लेकिन मेरी आवाज नक़्क़ारख़ाने में तूती की तरह थी। डेढ़ घण्टे बाद मेरा नम्बर आया और चुंगी अधिकारी ने मेरे फ़ार्म को बड़े ग़ौर से उलट-पुलट कर देखा और कहा कि चुंगी के ४५) रुपये बनते हैं। मैंने सौ रुपये का नोट दिया और नोट परखकर शेष रकम वापिस कर दी। फिर मैं उस बड़े हाल में आया जहाँ मेरा सामान रखा था जो हर व्यक्ति के शुभनाम के अनुसार व्यवस्थित था। मुझे यहां भी अव्यवस्था दृष्टिगोचर हुई क्योंकि कतिपय सज्जन चुगी अधिक़ारी के पास आए और जाने क्या जादू किया कि उनका सामान विना देख-भाल के ही सही कर दिया गया। एक अन्य नवयुवक अदन से चढ़े थे तथा हमारी केबिन के साथी थे। लगते भोले-भाले थे; लेकिन अधिक पढ़े-लिखे

न थे और एक व्यापारी प्रतीत होते थे। चुँगी अधिकारी ने उसकी भावनाओं की गहराई में पहुँचने के लिए अधिक समय नहीं लगाया। मुझे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि उनके पास पचास तोले सोने के साथ अन्य ऐसी भी चीज़ें थीं जिन्हें वह चुंगी से बचाना चाहते थे। उनसे सब चीज़ें ले ली गई। किन्तु थोड़ी देर पश्चात् एक अधेड़ उम्र के सज्जन मैले कुचैले कपड़े पहिने हुए निकले और मेरे सामने उन्होंने दो तीन अधिकारियों से हाथ मिलाया। हाथ मिलाते ही सारा मामला ठीक हो गया। यानी हाथ मिलाने का तात्पर्य घूस प्रदान करने का था।

वे महाशय अपने सामान को ले गये और न जाने कितना रुपया चुँगी अधिकारियों ने भेंट-स्वरूप हड़प लिया। मैने जब न्याय की दुहाई दी तो वे मेरे नम्रतापूर्ण आग्रह पर तनिक लज्जित से हुए। चुगी अधिकारी ने मुझसे कहा कि हमें दुःख है कि आपको प्रतीक्षा करनी पड़ी। मैंने कहा कि 'मै तो विद्यार्थी हूँ और कस्टम लायक चीज़ें फार्म में भर दी है।' यही नहीं मैंने चाबियों का गुच्छा भी उसे दे दिया और कहा कि आप सामान खोलकर देख लीजिए। मेरी इस बात ने उसे एक और बल दिया और उसे मेरे प्रति विश्वास हो गया तथा मेरा सामान सही कर दिया। अपना सारा सामान कुलियों पर लादकर मैं कस्टम घर के बाहर आया और सामान कार में रखवा दिया जो मुझे लेने आई थी। कुछ ही देर में मेरी कार (जिसमें मैं बिठाया गया था।) दूसरी कार के साथ जिसमें लाला जानकीदास बैठे थे समानान्तर बम्बई की चौड़ी सड़कों पर दौड़ती हुई कालबादेवी रोड पर गाडो-दिया बैंक की इमारत के नीचे आ खड़ी हुई जिसकी तीसरी मंजिल पर हम ठहरे हुए थे।

लगभग दो वर्ष पश्चात् माता-पिता से मिलने का शुभ अवसर

प्राप्त हुआ था। एक घंटे तक परिवार के परिवर्त्तनों के बारे में बात-चीत होती रही। फिर भोजन किया। बम्बई देखने का यह मेरा प्रथम अवसर था। मैंने लाला जानकीदास के सम्मुख बम्बई की सुप्रसिद्ध इमारतें देखने की इच्छा प्रकट की। उस दिन सौभाग्य से १५ अगस्त था। समस्त नगर रोशनी, झंडियों, चित्रों, बन्दनवारों से सजाया हुआ था। जनता में उत्साह हिलोरें ले रहा था। जुहू की मनोरम प्रकृति देखने की इच्छा बलवती होती गई। बस में सवार होकर हम शहर के लम्बे-चौड़े बाज़ारों, ऊँचे भवनों, मिलों की चिमनियों, बस, ट्राम और कारों की भीड़-भाड़ देखते हुए एक ऐसे स्थान पर आगए जहाँ सहस्रों गन्दी झोंपड़ियाँ पड़ी हुई थीं, जिनमें लोग बड़ा नारकीय जीवन बिता रहे थे। बाद में पूछने पर ज्ञात हुआ कि इसी नगरी में लाखों ऐसे व्यक्ति भी हैं जिनको ऐसी गन्दी, तङ्ग और सीलन भरी झोंपड़ियाँ भी नसीब नहीं और वे फुटपाथों पर ही सोते हैं। यहीं खाना बनाते हैं, यहीं सोते हैं। इन्ही पटरियों पर नन्हे शिशुओं का जन्म होता है और यहीं मर जाते हैं। इस समय यूरोप-अमेरिका के वैभव और खुशहाल सभ्यता का विचार मेरे मस्तिष्क से उड़ गया जिसे मैं देख कर और उसके बीच रहकर लौटा ही था और मुझे लगा जैसे यह एक मायावी स्वप्न ही था। ओह! भयङ्कर ग़रीबी, मानवता की उपेक्षा, शोषण और सरमाएदारी के प्रताड़ित ये भारतीय। मैं इन्हीं विचारों में उलझा था कि हमें बस जुहू के पास ले गई। हम शौक से उतर पड़े और देखा कि हमारे सामने अथाह गहन सागर लहरें मार रहा था।

उस रोज पानी कुछ उतरा-उतरा प्रतीत होता था। दूर तक पानी के बजाय बालू ही दिखाई देती थी। हम बालू में उतर पड़े और भ्रमण करते-करते उस स्थान पर आ गए जहाँ पर कि गांधी जी की मूर्ति स्थापित थी। यह उनकी मृत्यु के पश्चात् यहाँ स्थापित की गई

थी। इस जगह का यह भी महत्त्व माना जाता है कि गांधी जी सन् १९४३ में जेल से छूट कर यहीं विश्रामहेतु पधारे थे। मैंने कैमरे से चित्र भो लिया। उस मूर्ति के निकट एक हरे नारियल बेचने वाला बैठा था। लाला जानकीदास ने मुझे हरे नारियल का पानी पीने का आग्रह किया तो मैं टाल न सका। यह मैने पहली बार ही पिया था और बड़ा स्वादिष्ट लगा। फिर नारियल की गिरी भी खाई। जरा आगे बढ़े तो पॉमबीच होटल के पास आये। वहाँ मुझे एक सम्बन्धी से भेंट करनी थी जो एक सफल अभिनेता भी हैं। पता लगाया तो बताया गया कि वे इसी होटल के दूसरे भाग में रहते हैं। मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा जबकि यह देखा कि यह भाग झोंपड़ियों का बना था। मेरे सम्बन्धी उस समय एक चित्र के सिलसिले में बीकानेर गये हुए थे अतः निराश लौटना पड़ा। अगर वे होते तो निश्चय ही किसी स्टूडियो को देखता। थोड़ी देर में बस द्वारा हम वापिस लौट आए। खाना खाकर मिलने वाले लोगों से वार्तालाप किया। फिर नींद आ गई। दूसरे दिन सुबह नाश्ता करके बम्बई का पुरातत्त्व संग्रहालय, चिड़िया-घर, हैंगिग गार्डन और अन्य आकर्षक और दर्शनीय स्थान देखने निकल पड़े। संग्रहालय और चिड़ियाघर यद्यपि मेरे लिए इतने आकर्षण की वस्तु न थे क्योंकि मैंने विश्व का महान् संग्रहालय और चिड़ियाघर न्यूयार्क में देख लिया था। इंडिया गेट के निकट यकायक ध्यान आया कि अंग्रेज़ों ने अपनी सभ्यता, कलाप्रियता एवं वीरता की ऐतिहासिक याद छोड़ने के लिए यह सब बनाया है। उसी के पास ताजमहल होटल की विशाल इमारत नज़र आती थी जहाँ आज से कुछ साल पूर्व भार-तीयों और कुत्तों को अन्दर आने की आज्ञा नहीं थी। कितने शर्म की बात थी कि हम भारतीय अपने पैसे व्यय करके भी वहाँ न जा सकते थे; जबकि भारतीय श्रम और पूँजी से उसका निर्माण हुआ था।

इंडिया गेट देखने के पश्चात् हम लोग हैंगिंग गार्डन देखने गए। यह बड़ा ही मनोरम स्थान है। यह बाग़ पानी के उस टैंक पर बनाया गया है जिसका पानी सारे बम्बई शहर को वितरित किया जाता है। उसकी सुन्दर सड़कों के दोनों ओर बम्बई शहर के प्रतिष्ठित लोगों की चमचमाती कोठियाँ थीं। आगे बढ़े तो एक खूबसूरत फूलों से भरे पार्क में पहुँचे। वहाँ घास का हरा कालीन बड़ा भला लगता था। साथ ही फैंसिंग कलात्मक ढंग से काटी गई थी और ऐसा ज्ञात होता कि शेर, ऊँट तथा हाथी खड़े हैं। निस्सन्देह यह बाग़वानी का एक उत्कृष्ट उदाहरण था। शीतल-मन्द-सुगन्ध समीरण और कभी-कभी नन्हीं मेघ-फुहार मन को उल्लसित कर जाती। मैंने कई चित्र भी खींचे। फिर लौट आए।

घर पर आकर भोजन किया और एक कपड़े के व्यापारी से भेंट की जो जापान से अभी हाल ही में लौटे थे। उन्होंने ज़िक्र किया कि अगर हम भारत से सिलेसिलाए कपड़े जैसे स्लीपिङ्ग सूट इत्यादि अमेरिका भेजें तो बड़ा लाभ होगा क्योंकि भारत में मैनुअल लेबर बहुत सस्ता है और अमेरिका में बहुत महंगा। मैंने कहा कि एक तो भारत सरकार ऐसे व्यापार की इजाज़त कठिनाई से देगी दूसरे चुँगी भी काफ़ी है और इस तरह वही ऊँचे दाम पड़ जायेंगे। साथ ही अमेरिकन सरकार यह नहीं चाहती कि उनके जीवन स्तर में गिरावट हो। खाने पीने की वस्तुएँ वहाँ आवश्यकता से अधिक होती हैं। उन्हें या तो किसी मित्रराष्ट्र को दे दिया जाता है अथवा समुद्र में नष्ट कर दिया जाता है। यह बात चल रही थी कि वे बोले आओ तुम्हें हनुमान जी के मंदिर के दर्शन करायें। हनुमान मंदिर के अलावा भी उन्होंने कुछ दर्शनीय स्थानों की सैर कराई। घर लौटकर खाना खाया और क़रीब ११ बजे

सो गया। इस प्रकार बम्बई में दो सुखद और स्मरणीय दिवस बिता कर माता-पिता के साथ दिल्ली आगया।

दिल्ली स्टेशन पर बहुत से सम्बन्धी और शुभचिन्तक देखने को मिले और उनसे मिलकर असीम आनन्द प्राप्त हुआ। एक सप्ताह इसी प्रकार मिलने-जुलने में कट गया।

विश्वप्रसिद्ध डा० एस० रंगनाथन जिनको भारत में पुस्तकालय विज्ञान का पिता कहा जाता है, उस समय अमेरिका में ही थे जबकि मैं चला था। वे चाहते थे कि मैं शीघ्रातिशीघ्र दिल्ली पहुँचकर दिल्ली विश्वविद्यालय के संदर्भ विभाग में जो हाल ही में आयोजित किया जा रहा था, कार्य-भार सँभाल लूँ। मेरे भारत में जल्दी वापिस आने के उद्देश्य से ही उन्होंने मुझे इटली और स्विटज़रलैण्ड जाने से रोक दिया था तथा मेरी जहाज़ में सीट स्थगित करा दी जोकि मैंने उन देशों में जाने के लिए सुरक्षित कराई थी। इसके साथ ही रॉकफेलर फाउण्डेशन के पैसेज रिजर्व करने वाले अधिकारी मि० लायल से कह कर मेरी सीट हालैण्ड अमेरिकन लाइन्स के जहाज एस० एस० वीन्डाम में दिलवा दी थी। दिल्ली आते ही मैं प्रो० एस० दास गुप्ता से मिला और उन्होंने तत्काल उपकुलपति से मुझे नियुक्ति-पत्र भी दिलवा दिया। मैने बड़े उत्साह से कार्य शुरू किया और उनके सम्मुख एक योजना रखी जिसे बड़ा महत्त्व दिया गया और उसी के अनुसार कार्य करने को कहा गया। थोड़े ही दिनों में यह विभाग अनुसंधान करने वाले छात्रों और लाइब्रेरी साइंस के विद्यार्थियों में लोकप्रिय हो गया।

इसी बीच डॉ० हॉरेस आई पॉलमैन जो उन दिनों भारत में अमेरिकन दूतावास के सांस्कृतिक अटैची थे आये हुए थे। वाशिंगटन डी० सी० की 'लायब्रेरी ऑफ कांग्रेस' में उनके मातहत मैंने प्रशिक्षण प्राप्त

किया था। जब मैं मिला तो उन्होंने पूछा कि मैं क्या कर रहा हूँ ? मैंने कहा कि दिल्ली विश्वविद्यालय में रिफ्रेन्स लायब्रेरियन के तौर पर 'संदर्भ विभाग का गठन कर रहा हूँ। उन्होंने गंभीरता से बताया कि अमेरिकन दूतावास भारत में कई स्थानों पर पुस्तकालय खोलने की योजना बना रहा है, इसके लिए तुम बड़े उपयोगी सिद्ध होगे। हम प्रारंभ में आपको साढ़े सात सौ रुपया मासिक वेतन देंगे।

जीवन के उतार-चढ़ाव का मुझे अधिक अनुभव न था, फलतः जल्दबाज़ी में उनकी बात स्वीकार कर ली और दिल्ली विश्वविद्यालय में त्याग-पत्र दे दिया। डा० रंगनाथन, एस० दास गुप्ता और अन्य मित्रों को मेरी यह बात पसंद न आई। मैंने अमेरिकी दूतावास में कार्य प्रारंभ किया; किन्तु शुरू से ही वहाँ का वातावरण मुझे चुभने लगा। मुझ पर बचपन से ही राष्ट्रीय भावनाओं का प्रभाव था और विद्यार्थी जीवन से ही राष्ट्रीय आन्दोलन में सक्रिय भाग लिया था। मुझे वहाँ मौलिक कार्य करने का अवसर नहीं मिला। वहाँ तो आदेशों का पालन ही करना था। उस अमेरिकी पुस्तकालय में सब-कुछ अमेरिकन था— पुस्तकें, पत्र-पत्रिकाएँ, फर्नीचर अमेरिकन था। यानी वह एकाँगी दुनिया थी और सिर्फ एक ओर देखने को ही बाध्य किया जाता था। जिन विचारों को लेकर उच्च शिक्षा प्राप्त की थी उनका दम घुट रहा था। फलतः मैं उदास रहने लगा। मन में दृढ़ निश्चय किया कि कुछ दिन रह कर अर्थसंचय कर लूं ताकि दुबारा उच्च शिक्षा के लिए विदेश जा सकूँ।

जब ७ या ८ हज़ार रुपया इकट्ठा हो गया तो मैं श्री नन्दलाल मेहता से मिला। वे पहले से ही परिचित थे। उन्होंने पूछा कि क्या कर रहे हो ? मैंने सब हाल बता दिया। और मैंने यह इच्छा प्रकट की कि मैंने गाँधीजी पर १२ भाषाओं में प्रकाशित साहित्य को एक पुस्तक के

रूप में इकट्ठा किया है। सौभाग्यवश वह श्री मावलंकर को जानते थे जो उन दिनों 'गांधी स्मारक निधि' के अध्यक्ष थे। श्री काका कालेलकर जो 'गांधी स्मारक-संग्रहालय' के डायरेक्टर नियुक्त हुए थे श्री मावलंकर के पास ही ठहरे हुए थे। उन्होंने उनसे भेंट कराई। 'गाँधी साहित्य' पर मेरी खोज को देखकर गद्गद् हो गये। उन्होंने बताया कि बम्बई में स्थापित 'गांधी-स्मारक-संग्रहालय' को दिल्ली में लाया जा रहा है और 'कोटा हाउस एनैक्सी' में भारत सरकार ने चार कमरे इसीलिए दे दिये हैं। अगर आप हमारा साथ दें तो ठीक रहेगा। जब उन्हें यह ज्ञात हुआ कि मैं अमेरिकी दूतावास के लिए अपनी सेवाएँ अर्पित कर रहा हूँ तो यह बात उन्हें चुभी। उन्होंने मुझे अपने देश के लिए कार्य करने को प्रेरित किया और कहा कि अपना देश अगर कम पैसे भी देता है तो उसे भी स्वीकार कर लेना चाहिये। तुम अभी नवयुवक हो। देश का उत्थान तुम्हीं जैसे युवकों के कंधे पर आयेगा। अगर तुम लोग ही अपने देश के उत्थान कार्य के लिए त्याग न कर सकोगे तो लाखों करोड़ों भारतीयों के त्याग सेन व-प्राप्त स्वतंत्रता कैसे फलेफूलेगी। दादा मावलंकर के इन शब्दों ने मुझ पर जादू का प्रभाव डाला और मैंने निश्चय कर लिया कि अगले दिन ही त्याग-पत्र दे दूंगा।

ठीक एक मास पश्चात् मैंने अमेरिकी दूतावास ठुकरा दिया और 'गांधी स्मारक-संग्रहालय' संचालित करने का कार्यभार सँभाल लिया। इस मास के दौरान में बम्बई के संग्रहालय से जो सामान मालगाड़ी के डिब्बे में लद कर आया उसे मैं और साथी श्री पंड्या ठेलों में लदवाकर 'कोटा हाउस एनैक्सी' में ले आए। काम बढ़ने पर दो सहायक और बढ़ा लिये और जितनी पुस्तकें, पॉण्डुलिपियाँ एवं तस्वीरें हमारे पास थीं उन्हें सूचीकृत और वर्गीकृत करने का पूरा प्रयत्न किया गया। जब मैं इस कार्य में लगा तो विदेश जाने की भावना दिनों दिन बलवती

होती गई। मैं बराबर मिचीगन विश्वविद्यालय से पत्र व्यवहार कर रहा था। उन्होंने स्वीकृत कर लिया था कि मैं अपनी पी० एच० डी० के लिए गांधी जी की बिबलियोग्राफी को ही थीसिस का विषय बना सकता हूँ। पी० एच० डी० के लिए यह तो सिर्फ एक हिस्सा थी, साथ ही पुस्तकालय विज्ञान के विभिन्न पक्षों पर पांच परीक्षाएँ भी पास करनी थीं और फ्रेंच एवं जर्मन भाषाओं का इम्तहान भी पास करना था। मैं अपनी इच्छाओं को पूरा करने के लिए सदा ही बड़ी से बड़ी कठिनाइयों का सामना करने के लिए तैयार रहा हूँ। अतः चाहे कैसी भी मुसीबतें आएँ मैंने निश्चय किया कि पी० एच० डी० अवश्य ही करूँगा। पहले की भांति इस बार मुझे पासपोर्ट इत्यादि बनवाने के झंझटों में न पड़ना पड़ा। १०) रु० फ़ीस देकर मैंने अपने पासपोर्ट की अवधि पाँच साल के लिए बढ़वा ली। अमेरिकी दूतावास से वीसा प्राप्त करने की तरकीबें भी याद थीं। मैंने इस बार भी आवश्यक डाक्यूमेन्ट्स दे दिये। मगर इस बार अपनी दसों अँगुलियों की छाप न देनी पड़ी, क्योंकि वह पहले ही उनके पास थी।

१६

दूसरी विदेश यात्रा

इस बार मिचीगन विश्वविद्यालय से फैलोशिप मिल जाने के कारण विसा प्राप्त करने में सुविधा रही। इस समय कुछ रुपया मेरे पास पहले से ही जमा था और कुछ का और इन्तजाम करना पड़ा। पहले की तरह इस बार पैसेज मिलने में भी कठिनाई नहीं हुई। हर तरह के पानी के जहाज का अनुभव करने के लिए मैंने कारगोशिप यानी माल ढोने वाले जहाज में एक सीट प्राप्त की। इस जहाज का नाम एस० एस० केपटाउन था और यह कलकत्ते के एक बन्दरगाह से १० जुलाई, १९५२ को रात के साढ़े नौ बजे चला। इस समय मेरे जीवन की उल्लेखनीय बात यह थी कि मैं विवाहित हो चुका था और एक पिता भी बनने जा रहा था।

उन दिनों मेरी पत्नी अपने माता-पिता के पास कलकत्ते में ठहरी हुई थी। अपनी पत्नी को इस दशा में छोड़कर (जबकि वह माँ बनने वाली थी), और जो कि जहाज के निकट खड़ी थी और मुझे विदाई देने आई थी, मैं जहाज पर चढ़ गया तो मेरे मन में विचित्र भाव आने लगे। किन्तु उच्च शिक्षा के दृढ़ संकल्प ने मुझे सहारा और बल दिया और धीरे-धीरे पिछली स्मृतियाँ विलीन होती गई और मन में एक टीस-सी बस गई।

जहाज धीमे-धीमे बंगाल की खाड़ी के अथाह नीलम जल को चीरता हुआ सिलोन की ओर अग्रसर होने लगा। बंगाल की खाड़ी अपने तूफ़ान के लिए सदैव प्रसिद्ध है। उस दिन भी काफी बड़ा तूफ़ान उमड़ रहा था। 'दी सिटी ऑफ केपटाउन' जिसका भार १०,००० टन

से अधिक न था, लहरों के थपेड़ों के आगे नाचने लगा। इस बार मैंने 'सी सिकनैस' से बचने के लिए पूरी व्यवस्था कर ली थी। दिल्ली में मेरे मित्र ने मुझे चन्द गोलियाँ भेंट कीं जो 'सी सिकनैस' से बचने के लिए बड़ी लाभदायक सिद्ध हुईं। इन गोलियों का नाम ड्रैमेमिन है और पीले रंग की होती हैं।

दूसरे दिन हम विशाखापट्टम पहुँचे। जहाज जब खाड़ी में खड़ा हो गया तो मैं और मि० मुकर्जी (जो जहाज में साथ यात्रा कर रहे थे) शहर देखने गये जो बड़ा सुन्दर था। वहाँ हमने बढ़िया किस्म की कॉफी पी और कुछ पत्र भी लिखे। सायँकाल हम मद्रास पहुँचे और वहाँ भी शहर घूमने गये और सायँ का भोजन हमने वाई० एम० सी० ए० में खाया। दो दिन यात्रा करने के बाद हम कोलम्बो पहुँचे जहाँ हम तीन दिन ठहरे। कोलम्बो देखने का यह प्रथमावसर था। बन्दरगाह के पास बड़ी-बड़ी इमारतें थीं। अंग्रेजी ढँग के बाजार थे। बड़े-बड़े बैंकों की शाखाएँ थीं और अंग्रेजी सभ्यता वहाँ उसी तरह झलकती थी जैसे कलकत्ता, बम्बई और दिल्ली जैसे शहरों में झिलमिलाती है। मैं और श्री मुखर्जी कोलम्बो विश्वविद्यालय देखने गये और विश्व-विद्यालय के निकट ही रेस के मैदान भी देखे। एक सुप्रसिद्ध प्राचीन बौद्ध मंदिर के भी दर्शन किए जिसमें बुद्ध भगवान के विभिन्न मुद्राओं में चित्र अंकित थे। फिर श्रीलंका की विधान-सभा भी देखी। यह स्थान समुद्र-तट पर था और एक विशाल प्राचीन इमारत में स्थित था। हमारे पास प्रवेश-पत्र नहीं था अतः हम अन्दर प्रवेश न कर सके; लेकिन यह कहा जा सकता है कि नई दिल्ली की संसद इमारत से यह किसी भी प्रकार प्रभावशाली न थी। दोपहर का भोजन हमने एक सिलोनी रैस्टोरेन्ट में खाया। खाना यद्यपि भारतीय ढँग का था; लेकिन मिर्च अधिक थीं। फलतः मैं अधिक न खा सका और कुछ फलों

पर ही संतोष करना पड़ा। हमने एक अमेरिकन चित्र भी देखा। चल-चित्र-गृह एक अस्थायी हॉल था जो पता लगाने पर मालूम हुआ कि युद्ध-सैनिकों के लिए बनाया गया था। चित्र देखकर हम रात के नौ बजे जहाज पर वापिस आ गये। कुछ वार्तालाप करके हम सोगए।

अगले दिन हमारा जहाज दोपहर बाद प्रस्थान करने को था। प्रातः नाश्ता करके भ्रमण को निकल पड़े। डाकखाने से पिक्चर पोस्ट-कार्ड खरीदे और शुभकामनाएँ लिखकर मित्रों और सम्बन्धियों को प्रेषित किए। फिर कुछ घण्टे शहर भी गए और कुछ सामान भी खरीदा। एक बजे वापिस लौटे और जहाज में खड़े होकर बन्दरगाह में आने-जाने वाले जहाजों को देखते रहे। थोड़ी देर बाद हमारा जहाज एडन के लिए चल पड़ा। जहाज एडन में कुछ घण्टे ही ठहरा था अतः हम उतर न सके। वैसे मैं उतरने के लिए इच्छुक भी नहीं था; क्योंकि मैं पहले देख चुका था। एडन से एक सप्ताह चलने के बाद हम पोर्ट सईद पहुँचे। वहाँ एक दिन ठहरे, फिर सीधे बोस्टन को चल पड़े। यह यात्रा बड़ी रूखी थी और कड़ी भी थी। दो सप्ताह बराबर पानी पर चलने के कारण हम ऊब गये। जहाज जब बोस्टन के बन्दरगाह पर पहुँचा तो विशाल इमारतें दिखने लगीं। जहाज जब रुका तो एक चुँगी अधिकारी और एक डाक्टर ने हमारे कागजात देखे। डाक्टर ने मेरी मैडीकल रिपोर्ट का निरीक्षण किया और मेरी छाती का एक्स-रे भी देखा और मुझे स्वस्थ पाकर जहाज से उतरने का आदेश दे दिया। इसके बाद चुँगी अधिकारी ने मेरे चमड़े के दोनों सन्दूक खुलवाये और उन्हें स्वयं ही देखा। किन्तु कस्टम लायक कोई भी वस्तु न देखकर उसने चाक से ओ० के० लिख दिया। मिस्टर मुकर्जी के साथ भी यही बातें हुई। फिर हम जहाज से नीचे उतरने लगे तो जहाज के अधिकारियों से हाथ मिलाया और बिदा ली।

कुछ नौकर, जो हमारा खाना परोसते थे अथवा कमरा साफ करते थे, हम से मिले। हमें यह समझने में देर न लगी कि उनका क्या अभिप्राय था। अतः अपनी श्रद्धानुसार उन्हें पुरुस्कार देकर हम नीचे उतर आए, हमारे लिए वहाँ एक टैक्सी प्रतीक्षा कर रही थी। मुझे एन आर्बर जाना था जो बोस्टन से क़रीब ९०० मील दूर था। अपने साथ पूरा सामान बोझ के कारण नहीं ले जाना चाहता था। अतः रेल द्वारा एक सन्दूक जिसकी यात्रा में कोई आवश्यकता न थी एन आर्बर के लिए बुक करा दिया। सामान बुक कराने के बाद हम बोस्टन की वाई० एम० सी० ए० में आए और वहाँ एक कमरा लेकर ठहर गये। मेरे सर के बाल काफी बढ़ गए थे अतः एक नाई से हजामत बनवाई और पुरुस्कार-स्वरूप एक डालर और २५ सेन्ट बख़्शीश में देने पड़े, जो भारतीय मुद्रा में क़रीब साढ़े छः रुपये के बराबर थे। हजामत के बाद मैं वाई० एम० सी० ए० में आया और वहाँ छः सप्ताह के बाद स्नान-कर्म से निवृत्त हो, कपड़े बदलकर केफेटेरिया में श्री मुकर्जी के साथ गया और पेट भरकर खाना खाया। इस समय करीब एक बजा था। थोड़ी देर आराम करके हम लोग हार्वर्ड विश्वविद्यालय देखने गये।

मेरे मित्र मुकर्जी को एक सम्बन्धी से मिलना था जो अभी हाल में विवाहित हुए थे। मुझे भी डा० भटनागर और श्रीधर से मुलाकात करनी थी, जो दिल्ली विश्वविद्यालय में प्रोफेसर रहे थे। हमें इनके पते ज्ञात न थे अतः इस वर्ष के विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों की सूची देखी और पते मालूम किए। सर्वप्रथम हम डा० मुकर्जी के घर गये। संयोगवश डा० मुकर्जी ने शादी की खुशी में एक भोज का उसी दिन आयोजन किया था। अतः जब हम पहुँचे तो उनके आग्रह को न टाल सके। इतने दिनों बाद भारतीय ढंग के भोजन का निमंत्रण सचमुच हर्ष का विषय था। भोजन से निवृत्त होकर हम लोगों को डा० मुकर्जी

अपनी कार में बैठाकर सैर कराने ले गए। निश्चय ही, अमेरिका में प्रथम दिन कितना सुहावना था। पहले बोस्टन के कुछ ऐतिहासिक स्थान देखे जहाँ अमेरिका और इङ्गलैण्ड में १७७६ में पहली लड़ाई हुई थी। यह काफी लम्बा-चौड़ा स्थान है। यहाँ एक सिपाही की मूर्ति भी खड़ी है जिसने पहली गोली चलाई थी और वह भी अंग्रेजों की गोली का शिकार होकर अमर हो गया था। एक चट्टान पर कुछ वाक्य भी खुदे थे जिनमें अंग्रेजों और अमेरिकनों की लड़ाई का वर्णन था। वहाँ एक छोटी-सी नदी भी थी और उस पर प्राचीन काल का पुल भी बना था। छोटी-छोटी नौकाएँ भी खेई जा रही थीं। नदी के दोनों फूलों पर फूलों की क्यारियों में तरह-तरह के फूल खिले थे। यह दृश्य बड़ा ही मनोरम था। लौटकर महान् संत एमरसन का घर भी देखा और उनके नाम पर स्थापित संग्रहालय भी देखा। यह स्थान बड़ी ऊँचाई पर है और कार से सारा बोस्टन नगर दिखाई देता था। सड़क के दोनों तरफ हरी-भरी पहाड़ियाँ भी थीं। डाक्टर मुकर्जी हमें वाई० एम० सी० ए० छोड़ गए जहाँ हमने रात में विश्राम किया। प्रातःकाल मैंने न्यूयार्क जाने के लिए बस ली और दोपहर बाद न्यूयार्क आ गया।

न्यूयार्क में मैं अपने मित्र सरदार सुरजीतसिंह के पास ठहरा जो १६४८-४६ में मेरे साथ मिचीगन विश्वविद्यालय में पढ़ते थे और आजकल वहीं लायब्रेरी में कार्य करते थे। सरदारजी ने मेरी बड़ी खातिर की और भारतीय ढंग का भोजन बनाकर खिलाया। दूसरे दिन मैं भारतीय दूतावास की शाखा में पहुँचा जहाँ अपने एक पड़ौसी और पुराने मित्र श्री प्रकाशचन्द्र जैन से भेंट की। दोपहर का खाना भी उन्हीं के साथ खाया। फिर कोलम्बिया विश्वविद्यालय में आया जहाँ पर कि शाम को मैं इन्टरनेशनल हाउस में गया। न्यूयार्क का

अन्तर्राष्ट्रीय भवन अमेरिका के अन्तर्राष्ट्रीय विद्यार्थी भवनों में एक बहुत बड़ी जगह है। जहाँ संसार के सभी देशों के विद्यार्थी आकर बसते हैं और कोलम्बिया विश्वविद्यालय में विद्या ग्रहण करते हैं। उनसे मिलने-जुलने, वार्त्तालाप करने और साथ ही आमोद-प्रमोद में भाग लेने से अन्तर्राष्ट्रीय भावना जाग्रत होती है।

अगले दिन मैं यू० एन० गया जहाँ पर मैं पहिले आठ मास कार्य कर चुका था। वहाँ कई मित्र भी थे। जिनमें श्री सिकन, श्री पटेल, श्री राबर्टस् और यू० एन० लायब्रेरी के कई अधिकारी थे। कई साल बाद उनसे मिलकर बड़ी प्रसन्नता हुई और दोपहर का खाना उन्हीं के साथ खाया।

मेरे मित्र सुरजीतसिंह ने यू० एन० के उन नये कर्मचारियों से भी मिलवाया जो १९५० के बाद वहाँ लगे थे। शाम का भोजन उन्हीं के साथ किया और भोजनोपरान्त अन्तर्राष्ट्रीय भवन की ओर चल पड़ा। वहाँ कुछ मित्रों से वार्तालाप किया और सो गया। तीसरे दिन 'इण्डियन कॉउन्सिलर' के कार्यालय में श्री प्रकाशचन्द्र जैन से पुनः मिला। मुझे टाइपराइटर की आवश्यकता थी। श्री जैन ने अपना टाइपराइटर ५५ डालर में दे दिया। वे अपने घर पर लाये और फिर हम अपने निवास की ओर चल पड़े। उस दिन शनिवार था। ड्राइंगरूम में अन्य दिनों की अपेक्षा विद्यार्थियों की संख्या अधिक थी। कई नये भारतीय और विदेशी विद्यार्थियों से परिचय प्राप्त किया। रात के साढ़े दस बजे सरदारजी के घर की ओर चल पड़ा। अगले दिन अलख सुबह सरदारजी के साथ अपना सामान टैक्सी में रखकर 'ग्रे हाउंड' बस स्टेशन की ओर चल पड़े। वहाँ सरदारजी मुझे बस में बैठाकर यू० एन० चले गये और मैं एन० आर्बर की तरफ चल पड़ा। दो दिन चलने के बाद एन० आर्बर पहुँचा। वहाँ मैंने मथुरा निवासी मित्र से सम्बन्ध जोड़ा

जो १९४८ में मेरे साथ एक ही जहाज से अमेरिका आए थे। उन्होंने बड़ा आदर किया और एक अन्य मित्र के पास ठहरने की व्यवस्था कर दी जिनके पास काफी जगह थी। इस बीच मैंने अपने पुराने रहने के स्थान की पुनर्व्यवस्था करली जिसमें कि १९४८ और ४९ में रहता था। मकान की मालकिन एक जमींदारिन है। उनका नाम श्रीमती पामर है। मैं सदैव उन्हें माता कहता हूँ। निश्चय ही वह एक महान् माता है। जितने दिन मैं अमेरिका में रहा मैंने कभी यह अनुभव नहीं किया कि मैं एक विदेशी के घर में किराये पर रहता हूँ। उसने हर दुख-सुख में मेरा साथ दिया और बेटे की तरह व्यवहार किया। उसके बेटे-बहू भी मेरे ऊपर मेहरबान थे। इस घर में मैं २० सितम्बर १९५४ तक रहा। मैं सदैव इन लोगों का आभारी रहूँगा और उनकी याद सदैव मेरे हृदय-पटल पर अंकित रहेगी। निश्चय ही ऐसी माताएँ धन्य हैं।

१७

एन० आर्बर में पी-एच० डी० की तैयारी

एन० आर्बर में आते ही मैं 'लायब्रेरी विज्ञान विभाग' के चेयरमैन प्रोफेसर जैल्सनेस और अपने गुरु डा० किलगर से मिलने गया। वैसे तो प्रवेश पहले ही पा चुका था; परन्तु उनसे सलाह लेकर पी-एच० डी० का प्रोग्राम बनाना था। उनसे सलाह लेकर कार्यक्रम बनाया और उसी के अनुसार रिसर्च करने का इरादा किया। इधर १९४८ के दाखिले की भाँति इस साल भी एक लम्बा फार्म भरना पड़ा। डाक्टरी परीक्षा भी हुई। वहाँ जब डाक्टरी परीक्षा होती है तो हर लड़के और लड़की से अपने सारे वस्त्र उतारने को कहा जाता है और उन्हीं के दिए हुए थैलों में रख लेते हैं। लड़के और लड़कियों की डाक्टरी परीक्षा अलग-अलग स्थान पर होती है। फिर शरीर के हर अंग के लिए एक अलग-अलग विशेषज्ञ होता है जो लाइन में बैठा रहता है और यन्त्रों द्वारा जाँच करता है। छाती का एक्स-रे भी लिया जाता है। मल-मूत्र का भी निरीक्षण होता है। इस डाक्टरी परीक्षा में करीब ढाई घण्टे लगते हैं, और इस बीच हर विद्यार्थी को बिल्कुल नङ्गा ही रहना पड़ता है। इस तरह लगभग ३ घण्टे बाद मुझे डाक्टरी जाँच से छुटकारा मिला। फिर 'परिचय-पत्र' बनवाने के लिए चित्र खिचवाना पड़ा तथा पूर्व भरे हुए फार्म को 'एडमीशन हॉल' में ले जाकर सम्बन्धित विभागों को सौंप दिया। पहले अध्ययन-काल की शुल्क भी जमा करदी और रसीद लेकर मिचीगन यूनियन लौट आया जहाँ मैंने दोपहर का भोजन किया। फिर 'इण्टरनेशनल सेण्टर' में उस दिन के समाचार-पत्र पढ़े और रेडियो से खबरें सुनीं और मित्रों से भेंट-मुलाकात की।

सायँकाल तक मैं वहीं रहा और सायँ का भोजन खाकर घर वापिस आ गया। दूसरे दिन अध्ययन प्रारम्भ हो गया।

अमेरिकन विश्वविद्यालय में अंग्रेजी और भारतीय विश्वविद्यालयों के मुकाबिले डॉक्टरेट का ढङ्ग भिन्न है। वहाँ पी-एच० डी० के लिए उसी विद्यार्थी को अनुमति मिलती है जबकि वह पूरक परीक्षाएँ पास करले। फ्रेंच और जर्मन की परीक्षाएँ भी उत्तीर्ण करनी पड़ती हैं तब कहीं थीसिस लिखने की आज्ञा मिलती है। एक साल के कड़े परिश्रम के बाद मैंने 'पूरक परीक्षाएँ' पास कीं और फ्रेंच और जर्मन भाषा के इम्तहान में भी उत्तीर्ण हो गया। अब थीसिस लिखना मेरे लिए सरल था, क्योंकि मैं अपने विषय पर कई वर्षों से अनुसंधान कर रहा था। मुझे यह सदैव स्मरण रहेगा कि मैंने सुबह से रात के दो बजे तक काम किया था। मैंने अप्रैल १९५४ में अपना थीसिस समाप्त कर लिया था। यह थीसिस इतना बड़ा था कि इसको टाइप कराने में भी एक मास लग गया और इसकी तीन जिल्दें बँधवायीं। एक प्रति मिचीगन विश्वविद्यालय को और दो प्रतियाँ लायब्रेरी साइन्स के विभाग को ताकि डॉक्टरेट कमेटी के सदस्य थीसिस को सुविधा से पढ़ लें।

अब मुझे एक अन्य कठिन परीक्षा में उत्तीर्ण होना था! वह भी करीब दो घण्टे की मौखिक परीक्षा। तिथि भी निश्चित हो गई और मैंने कुछ तैयारी भी की। करीब ३ बजे कमेटी के सदस्यों ने मेरी परीक्षा की और सायँ ५ बजे यह क्रम चला। फिर कमेटी अध्यक्ष अन्य कमरे में सदस्यों से सलाह करने गये और लगभग १५ मिनट में डाक्टर किलगोर मुस्कराते हुए मुझे बधाई देने लगे तो मेरी खुशी का ठिकाना न रहा। जो स्वप्न मैंने १५ साल पहले देखा था वह आज पूरा हो रहा था।

मैंने सभी सदस्यों और डा० किलगोर को धन्यवाद देते हुए विदाई

ली। मेरे मित्रों को भी इस बात पर खुशी हुई कि मैं पी-एच० डी० में सफल हो गया।

मैंने दो तार एक अपने माता-पिता को और दूसरा पत्नी एवं ससुर को भेजा और उनमें दो स्मरणीय शब्द लिखे 'पी-एच० डी० विजय' (Won Ph. D.) तार देने के उपरान्त मैं मिचीगन यूनियन आया। मेरा मुँह सूखा हुआ था। विचारों का ताँता लग रहा था। हर्ष से भूख मर चुकी थी। मैं सीधा इण्टरनेशनल सेण्टर पहुँचा जहाँ कुछ मित्र प्रतीक्षा में थे। ज्योंही ड्राइंगरूम के दरवाजे में होकर अन्दर घुसा तो श्री रघुवीर प्रसाद जो मेरे पड़ौसी ही नहीं अपितु एक अच्छे मित्र थे मेरी ओर लपके और बधाई देने लगे। मेरे लिए यह एक बड़ा शुभ और महान् दिन था। थोड़ी देर में कुछ मित्र और आगए और बधाई देने लगे। करीब एक घण्टे मैं उनके बीच बैठा रहा और फिर इस डर से कि कहीं केफेटेरिया बन्द न हो जाय भोजन करने के लिए प्रस्थान किया। इसके बाद हम लोग सिनेमा देखने गये। वहाँ से लौटकर खुशी-खुशी सो गए।

मिचीगन विश्वविद्यालय में १५ जून को दीक्षान्त समारोह होने वाला था। वहाँ का दीक्षान्त समारोह एक बड़े स्टेडियम में होता है जिसमें ९५,००० आदमी एक साथ बैठ सकते हैं। इस बार मिचीगन विश्वविद्यालय पी-एच० डी० और डी० एस० सी० में उत्तीर्ण होने वाले विद्यार्थियों को एक हुड उपहार में दे रहा था। मेरे मित्र श्री रघुवीर प्रसाद लाट ने रँगीन चित्र लेने का पूरा इरादा किया था; किन्तु ज्योंही स्टेडियम के निकट पहुँचे मूसलाधार वर्षा होने लगी जो अमेरिका में पहले कभी नहीं पड़ी थी। करीब डेढ़ घण्टे पश्चात् बारिश रुकी। आशा तो यह थी कि फिर वर्षा न होगी परन्तु जब दीक्षान्त-समारोह शुरू हुआ तो फिर वर्षा होने लगी। फलस्वरूप यूनीवर्सिटी के प्रेज़ीडेण्ट और

माननीय अतिथि दीक्षान्त-समारोह में भाग लेने आए थे अपना कार्य कुछ क्षणों में समाप्त करके चले गये।

मिचीगन विश्वविद्यालय के दीक्षान्त-समारोह के इतिहास में यह सबसे छोटा दीक्षान्त-समारोह था। विद्यार्थीगण अपनी-अपनी डिग्रियाँ और हुड लेकर अपने-अपने निवास-स्थान की ओर चल पड़े। मैं भी अपने कुछ मित्रों के साथ 'मिचीगन-यूनियन' में आ गया और वहाँ मित्रों के साथ खाना खाया। श्री लाट जो मेरी तस्वीर वहाँ न ले सके थे उन्होंने सलाह दी कि यह अवसर सदैव नहीं आता अतः इस 'एकेडेमिक-ड्रेस' में फोटो जरूर खिचवानी चाहिए। वह मुझे फोटोग्राफर के एक स्टूडियो में ले गये और वहाँ मेरे कई पोज़ लिये गए, जिनमें से एक चुन लिया और मैंने एन्लार्जमेण्ट भी करा लिया था।

दीक्षान्त-समारोह के पश्चात् मैं एन० आर्बर में तीन मास और ठहरा; क्योंकि वहाँ व्यवहारिक प्रशिक्षण ले रहा था जिसे मैं अनुभव के दृष्टिकोण से आवश्यक समझता हूँ। इसके साथ ही मुझे तीन सौ डालर प्रतिमास व्यय के लिए मिलते थे।

ट्रेनिंग समाप्त होने पर एन० आर्बर छोड़ना ही पड़ा और अपना सामान बाँधकर सायँकाल बस से न्यूयार्क की ओर प्रस्थान किया। यहाँ आकर मैं पाँच दिन तक ठहरा और वापिस आने का कार्यक्रम बनाने लगा।

१८

न्यूयार्क से वापिसी

१७ सितम्बर को मैं अलख सुबह जाग उठा, और फारिग होकर 'इन्टरनेशनल हाउस' न्यूयार्क की पाँचवीं मंजिल के विशाल भवन के उस कमरे में आ गया जहाँ मैं एक सप्ताह से ठहरा हुआ था। गुसलखाने से जब लौटा तो मेरी भेंट बिहार के दो नौजवान विद्यार्थियों से हुई जो न्यूयार्क की चहल-पहल से कुछ घबराए हुए थे। कान पर जनेऊ चढ़ाकर शौच के बाद साबुन से हाथ धो रहे थे। उनके यज्ञोपवीत को देखकर मुझे अपना भी यज्ञोपवीत याद हो आया जो भारत से प्रस्थान करते समय कपड़े उतारते समय उतर गया था। बातचीत के दौरान में मैंने मुस्कराते हुए पूछ ही डाला कि आप कहाँ से आए हैं? उत्तर में बड़े घबराए-से बोले कि हम दोनों कल रात हवाई जहाज से न्यूयार्क पहुँचे हैं और खदान प्रशिक्षण प्राप्त करने के लिए कोलोरेडो जा रहे हैं। मैंने चाव से पूछा कि क्या आपके पास दूसरा जनेऊ है? उनमें से एक भाई ने मेरी ओर आश्चर्य से देखा और कहा कि क्या वास्तव में आपको एक यज्ञोपवीत चाहिए? मैंने कहा—'हाँ'। वे दौड़कर अपने कमरे से जनेऊ ले आए और उनके मुख से मन्त्रोच्चारण के साथ-साथ मैंने यज्ञोपवीत धारण कर लिया। उन्हें धन्यवाद देकर मैं अपने कमरे में लौट आया और सामान ठीक किया।

अब ७॥ बजे थे। मुझे ९ बजे तक उस जगह पहुँचना था जहाँ से एम० एस० यूनाइटेड स्टेट्स जहाज प्रस्थान करने वाला था। एलीवेटर से मैं अपना सामान नीचे लाया और कमरे का किराया चुकाकर चाबी वापिस करके पेशगी का रुपया ले लिया। तत्पश्चात् फोन करके

टैक्सी बुलाई जो दो मिनट में आ गई। मैं उसमें बैठकर 'हडसन-नदी' के तट पर आया और दरवाजे पर अपना पासपोर्ट एवं सेलिंग परमिट दिखाकर बन्दरगाह के अन्दर प्रवेश किया। भारी सामान मैं पहले ही एन० आर्बर से रवाना कर चुका था जो इस जहाज के तहखाने में सुरक्षित रख दिया गया था। साथ तो एक सूटकेस और हैण्डबेग ही लिये हुए था। जो एक कुली ने मेरे केबिन में ला रखा।

यह जहाज (एम० एस० यूनाइटेड स्टेट्स) अमेरिका का सबसे बड़ा, आरामप्रद और विलासप्रद जहाज है। यह सबसे अधिक गति वाला और नवीनतम पद्धति पर बना है। यह ९९० फीट लम्बा और १०१ फीट ६ इंच चौड़ा है। यह ५३,३०० टन भारी है। यह सर्वप्रथम न्यूयार्क से ३ जुलाई सन् १९५२ में चला था तथा योरप से १० जुलाई १९५२ को वापिस लौटा था। यह न्यूयार्क से लन्दन करीब ५ दिन में पहुँचा देता है जबकि अन्य जहाज ९ या १० दिन लेते हैं। मैं ६ बजे डेक पर पहुँच गया था। मेरा सामान डेक के दरवाजे पर ले लिया था और एक मशीन द्वारा जहाज पर पहुँचा दिया गया। मैं अन्दर घुसा और अपना टिकिट एवं सेलिंग परमिट दिखाकर जहाज पर चढ़ गया। सबसे पहले मैं अपने केबिन में पहुँचा जहाँ मेरा सामान रखा गया था। सामान इत्यादि अपनी बर्थ पर रखकर मैं कॉमन रूम में आया जहाँ मेरे मित्र अपने माता-पिता और बहिन के साथ बैठे थे। वे लोग अपनी बेटी को पहुँचाने आए थे जो लन्दन विश्वविद्यालय में यू० एस० ए० की फैलोशिप पर अंग्रेजी साहित्य पढ़ने जा रही थी। जब तक जहाज नहीं चला तब तक हम लोग वहीं बैठे बातचीत करते रहे। जब जहाज चल पड़ा तो खाने की घण्टी बजी और हम लोग भोजन के कमरे में गये। हमारे खाने की मेज पर मुझ समेत चार यात्री थे।

उनमें से दो योरुप सैर के लिए जा रहे थे। तीसरी एक लड़की मेरे एक मित्र की बहिन थी। यह लोग स्वाभाविकतया मांसाहारी थे; किन्तु मैंने शाकाहारी होने के कारण खूब फल, फलों का रस और उबली हुई सब्जियाँ खाई। हमें 'यात्रियों की सूची' की एक-एक प्रति भी दी गई जिसमें कि मेरा नाम छपा था। इस जहाज में एक अच्छा सिनेमाघर भी था। नाई की दुकान थी, बच्चों के खेलने का एक सुसज्जित कमरा, डांसिंग हॉल, अस्पताल, डाकखाना, बाजार, पुस्तकालय, धूम्रपान-कक्ष, बैंक, टाइप का कमरा, गिरिजाघर और छापाखाना था। यानी यह जहाज एक अच्छा-खासा नगर था। हर कमरा वायु-अनुकूलित (Air-Conditioned) था और उसमें एक-एक फोन भी लगा था। हर सायँ वहाँ इनडोर-आउटडोर खेल भी होते थे। नहाने का तालाब भी था। यह जहाज किसी महाराजा के राज-भवन की तरह था। इसके जीने शानदार लकड़ी के बने थे। हर तरफ कालीन बिछे थे। यह पाँच दिन ऐसे कटे जैसे किसी जादू की नगरी में पहुँच गया हूँ। पाँच दिन बाद जहाज साउथैम्पटन पहुँचा। वहाँ से मैं रेल द्वारा लन्दन पहुँचा और 'भारतीय विद्यार्थी छात्रावास' में ठहरा जहाँ पर कि मैं पहले ही ठहरने का प्रबन्ध कर चुका था। लन्दन में पहले 'असोसिएशन ऑफ़ सांइटीफ़िक लायब्रेरीज़ एण्ड इन्फर्मेशन ब्यूरो' (ASLIB) की त्रि-दिवसीय-सभा में भाग लिया तथा लन्दन के प्रमुख-प्रमुख स्थान देखे। २८ सितम्बर को सायँ ४ बजे पी० एण्ड ओ० लाइन के एस० एस० आइबेरिया जहाज में सवार होकर बम्बई की ओर रवाना हो गया। इस जहाज को यह पहली ही यात्रा थी जो पिछले सप्ताह ही बनकर तैयार हुआ था। पी० एण्ड ओ० लाइन का यह सबसे बड़ा और भारी जहाज है। इसका वज़न २९,६०० टन है। इसकी लम्बाई ७१८ फीट ९ इञ्च है और चौड़ाई ९० फीट ६ इञ्च है। इस जहाज में दो

श्रेणियाँ हैं—प्रथम श्रेणी और भ्रमणकारी श्रेणी (Tourist Class)। प्रथम श्रेणी में ६७४ यात्री थे और जिस टूरिस्ट क्लास में मैं था उसमें ७३३ यात्री थे। इसमें ७११ स्टाफ कर्मचारी थे। जहाज में कुल मिलाकर २,११८ आदमी थे। इस जहाज में खाने का कमरा ही एअर-कण्डीशण्ड था। अन्य सुविधाएँ पहले जहाज की तरह थीं। अगले दिन इस जहाज के खाने की टेबिल पर मुझ सहित चार व्यक्ति थे। जिनमें दो लङ्कावासी थे और दो भारतीय थे। उनमें से एक डाक्टर था दूसरा कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय का एक विद्यार्थी था जो अर्थशास्त्र में डॉक्टरेट करके लौटा था।

जो बैरा खाना परोसता था वह बड़ा आलसी था और मेरे लिए सब्जी की तश्तरी लाना वह हमेशा भूल जाता था। जैसे-तैसे करके यह १४ दिन कटे और लाल सागर पार करके हम पोर्ट सईद आए जिसकी आबादी १ लाख २० हजार है। यह पोर्ट सईद स्वेज नहर के उत्तरी प्रवेश मार्ग पर स्थित है। यह एक बन्दरगाही कस्बा है, इसलिए पास ही पास हर तरह की दुकानें पाई जाती हैं। चमड़े का सामान यहाँ अधिक और सस्ता मिलता है। हमारा जहाज यहाँ करीब १० घण्टे ठहरा। मैं अपने कुछ साथियों समेत बाजार घूमने गया और एक चमड़े का थैला, बटुवा इत्यादि खरीदकर लाया। मेरे साथियों ने भी कुछ चीजें खरीदीं और करीब चार घण्टे घूमने के बाद हम लोग जहाज पर वापिस आ गये।

रात के दस बजे जहाज चल पड़ा था। थोड़ी देर बाद स्वेज नहर में प्रवेश किया जिसका वृतान्त मैं पहली यात्रा के विवरण में लिख चुका हूँ।

४ दिन बाद हमारा जहाज अदन पर आया और वहाँ करीब ८ घण्टे रुका। हम लोग शहर घूमने भी गये और कुछ खरीदा भी। उनमें

घड़ी प्रमुख थी। अदन के बाद हम लोग ५ दिन चलकर बम्बई पहुँचे इस समय करीब ६ बजे थे। दूर से ही 'गेट आफ इण्डिया' एवं ताजमहल होटल की बुर्जियाँ नजर आने लगीं। क्षणों में ही जहाज बन्दरगाह में आ लगा और हम नीचे उतरने की तैयारी करने लगे। इस बार माता जी की तबियत खराब थी। अतः वे और पिता जी न आ सके; किन्तु छोटे भाई श्रद्धानन्द और पं० अजयसिंह मुझसे मिलने आए थे। श्रद्धानन्द ने जहाज में आने का परमिट प्राप्त कर लिया था। जब मुझे वह मिला तो मेरी खुशी का ठिकाना न रहा।

चुङ्गी इत्यादि से फारिग होकर हम बाहर आए और लाला रामनिवास की कार में बैठकर उनके निवास-स्थान पर पहुँचे जो मैरिन ड्राइव पर स्थित है। उमेश शर्मा, जो मेरे निकट सम्बन्धी हैं और एक अच्छे अभिनेता के रूप में प्रसिद्ध हैं, मुझे घर ले गये जहाँ मैं रात को ठहरा। दूसरे दिन उन्होंने बम्बई की सैर कराई और एक स्टूडियो के दर्शन भी कराये। एक दिन और ठहरकर हम शाम की गाड़ी से श्रद्धानन्द और श्री अजयसिंह के साथ दिल्ली आ गये। स्टेशन पर पिताजी, मित्र, मेरी पत्नि, पुत्र एवं परिचित लोग मिलने आए थे। ३ साल बाद हम मिल रहे थे। इस बिछोह की अवधि के बाद यह मिलन कितना सुखद था! घर पर पहुँचा तो माताजी प्रतीक्षा में बैठी थीं। मैंने उनके चरण छुए और अपने को धन्य समझा। घर पर मेरे आगमन से सुख की एक लहर हिलोर ले रही थी।

यही मेरी द्वितीय विश्व-यात्रा का अन्तिम दिन था।